ಕರ್ನಾಟಕ ರಾಜ್ಯ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ
ಮಾನಸಗಂಗೋತ್ರಿ, ಮೈಸೂರು – ೫೭೦ ೦೦೬.

Karnataka State Open University
Manasagangothri, Mysore - 570 006.

हिन्दी साहित्य का इतिहास और व्याकरण

M. A. Previous HINDI
Course / Paper - IV

Block - 4

ಉನ್ನತ ಶಿಕ್ಷಣಕ್ಕಾಗಿ ಇರುವ ಅವಕಾಶಗಳನ್ನು ಹೆಚ್ಚಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮತ್ತು ಶಿಕ್ಷಣವನ್ನು ಪ್ರಜಾತಂತ್ರೀಕರಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ ವ್ಯವಸ್ಥೆಯನ್ನು ಆರಂಭಿಸಲಾಗಿದೆ.

ರಾಷ್ಟ್ರೀಯ ಶಿಕ್ಷಣ ನೀತಿ **1986**

ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯವು ದೂರಶಿಕ್ಷಣ ಪದ್ಧತಿಯಲ್ಲಿ ಬಹುಮಾಧ್ಯಮಗಳನ್ನು ಉಪಯೋಗಿಸುತ್ತದೆ. ..... ವಿದ್ಯಾಕಾಂಕ್ಷಿಗಳನ್ನು ಜ್ಞಾನ ಸಂಪಾದನೆಗಾಗಿ ಕಲಿಕಾ ಕೇಂದ್ರಕ್ಕೆ ಕೊಂಡೊಯ್ಯುವ ಬದಲು, ಜ್ಞಾನ ಸಂಪತ್ತನ್ನು ವಿದ್ಯೆ ಕಲಿಯುವವರ ಬಳಿ ಕೊಂಡೊಯ್ಯುವ ವಾಹಕವಾಗಿದೆ.

ಡಾ || ಕುಳಂದೈಸ್ವಾಮಿ

The Open University system has been initiated in order to augment opportunities for higher education and as an instrument of democratising education.

National Education Policy 1986

The Open University system makes use of Multi-media in distance education system. ..... it is a vehicle which transports knowledge to the place of learners rather than transport people to the place of learning.

Dr. Kulandai Swamy

प्रथम एम.ए. - कोर्स चार

Course - IV, Paper - IV

4

''हिन्दी साहित्य का इतिहास और व्याकरण''

'' हिन्दी साहित्य का इतिहास ''

Unit No. 27 to 31		Page No.
अनुक्रमणिका		

इकाई	27	प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद	1 - 37
इकाई	28	आधुनिक काल (अन्य काव्य प्रवृत्तियाँ)	38 - 82
इकाई	29	आधुनिक काल (गद्य) हिन्दी गद्य-साहित्य का विकास	83 - 125
इकाई	30	हिन्दी नाट्य साहित्य	126 - 163
इकाई	31	गद्य साहित्य की अन्य विधाएँ, रेखाचित्र, संस्करण आदि	164 - 195

पाठ्यक्रम अभिकल्प तथा संपादकीय समिति

प्रो.एम.जी.कृष्णन
उप कुलपति तथा अध्यक्ष
क.रा.मु.वि.विद्यालय,
मैसूर - 6

प्रो.एस.एन.विक्रमराज अरस
डीन (शैक्षणिक) - संयोजक
क.रा.मु.वि. विद्यालय
मैसूर - 6

बी.जी.चन्द्रलेखा — संयोजिका
अध्यक्षा, हिन्दी विभाग (से.नि.)
क.रा.मु.वि.विद्यालय
मैसूर - 6

डॉ.बी.गणेश — संपादक
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग (से.नि.)
ज्ञानभारती, बेंगलूर विश्वविद्यालय
बेंगलूर - 56.

पाठ्यक्रम की लेखिका

डॉ.एम.विमला
रीडर, हिन्दी विभाग
ज्ञानभारती, बेंगलूर वि.विद्यालय
बेंगलूर.

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, मैसूर, शैक्षणिक अनुभाग द्वारा निर्मित ।
सभी अधिकार सुरक्षित । कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति प्राप्त किए बिना, इस कार्य के किसी भी अंश को किसी भी रूप में अनुलिपित या किसी अन्य माध्यम द्वारा प्रतिकृति नहीं किया जाएगा ।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम पर अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मानस गंगोत्री, मैसूर - 6 से प्राप्त की जा सकती है ।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से **रजिस्ट्रार (प्रशासन)** द्वारा मुद्रित व प्रकाशित ।

ब्लाक परिचय

प्रिय विद्यार्थी,

आप **ब्लॉक - एक** के **इकाई 15** में 'साहित्य का काल विभाजन', **इकाई 16** में 'आदिकाल तथा तत्कालीन परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ', **इकाई 17** में 'आदिकाल के प्रमुख कवि और काव्य', **इकाई 18** में भक्तिकाल तथा तत्कालीन परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ' का अध्ययन किया और **ब्लॉक - दो** के **इकाई 19** में 'निर्गुण ज्ञानमार्गी संत काव्य धारा', **इकाई 20** में 'निर्गुण प्रेममार्गी काव्यधारा', **इकाई 21** में 'कृष्ण भक्ति काव्य परंपरा', **इकाई 22** में 'रामभक्ति काव्य परंपरा' के बारे में जानकारी मिली तथा **ब्लॉक - तीन** के **इकाई 23** में 'रीतिकाल की परिस्थितियाँ तथा प्रवृत्तियाँ', **इकाई 24** में 'रीतिकालीन कविता और उसका स्वरूप', **इकाई 25** में 'आधुनिक काल (काव्य) परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ' और **इकाई 26** में आधुनिक काव्य के 'छायावादी युग के काव्य' के बारे में अध्ययन किया ।

अब **ब्लॉक - चार** के **इकाई 27** में 'प्रगतिवाद और प्रयोगवाद' के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं । **इकाई 28** में 'आधुनिक काव्य की प्रवृत्तियाँ (नयी कविता, नया गीत, साठोत्तरी हिन्दी कविता)' के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं । **इकाई 29** में 'आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का विकास, (प्रेमचंदयुग,

प्रसाद युग आदि)' का अध्ययन करने जा रहे हैं । **इकाई 30** में 'हिन्दी नाट्य साहित्य का उद्‌भव और विकास' के बारे में अध्ययन करेंगे तथा एकांकी पद्य-एकांकी, गीति-नाट्य, रेडियो नाटक, नुक्कड़-साहित्य आदि के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं । **इकाई 31** में 'गद्य साहित्य की विधाएँ जैसे रेखाचित्र, जीवनी-साहित्य, रिपोर्ताज आदि के बारे में जानकारी मिलेगी ।

शुभकामनाओं के साथ,

डॉ॰कांबले अशोक
अध्यक्ष:, हिन्दी विभाग
क.रा.मु.वि. विद्यालय
मैसूर - 6.

इकाई सत्ताईस : प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद

इकाई की रूपरेखा

27.0. उद्देश्य

27.1. प्रस्तावना

27.2. प्रगतिवाद का जन्म और विकास

27.3. प्रगतिवाद का मूल सिद्धांत

27.4. प्रगतिवाद के मूल तत्व

- 27.4.1. सामाजिक यथार्थवाद
- 27.4.2. सामयिक समस्याओं का चित्रण
- 27.4.3. बौद्धिकता एवं व्यंग्य का प्रसार
- 27.4.4. रूढ़ि-विरोध
- 27.4.5. शोषितों का करूण गान
- 27.4.6. शोषकों के प्रति घृणा और रोष
- 27.4.7. क्रांति की भावना
- 27.4.8. मार्क्स एवं रूस का गुणगान
- 27.4.9. सांस्कृतिक समन्वय की भावना
- 27.4.10. मानवता की महत्ता
- 27.4.11. कलापक्ष

27.5. रामधारी सिंह 'दिनकर'

27.6. प्रगतिवाद का मूल्यांकन

27.7. प्रयोगवाद का जन्म और विकास

27.8. प्रयोगवाद का मूल उद्देश्य

27.9. प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

27.9.1. अहंवादी प्रवृत्ति का प्राधान्य

27.9.2. यथार्थवाद का आग्रह

27.9.3. निराशावाद

27.9.4. बौद्धिकता का प्राधान्य

27.9.5. उपमानों की नवीनता

27.9.6. साधारण विषयों का निरूपण

27.9.7. छंद-योजना

27.9.8. भाषा का प्रयोग

27.10. प्रयोगवाद की आलोचना

27.11. प्रयोगवाद का एक नया रूप-प्रपद्यवाद

27.12. प्रयोगवाद की उपलब्धियाँ

27.13. समाहार

27.14. बोध प्रश्न

27.0. उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत छायावादोत्तर कालीन प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद की विभिन्न प्रवृत्तियों का परिचय दिया जा रहा है । इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

1. प्रगतिवाद के उद्‌भव और विकास से परिचित होंगे ;
2. प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियों की जानकारी प्राप्त करेंगे ;
3. प्रयोगवाद के उद्‌गम और स्वरूप को समझ पायेंगे ;
4. प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियों की जानकारी प्राप्त करेंगे ;
5. प्रमुख प्रगतिवादी कवियों से परिचित होंगे ;
6. प्रयोगवादी कवियों की जानकारी प्राप्त करेंगे ।

27.1. प्रस्तावना

डॉ.नामवर सिंह का कहना है - "छायावाद के गर्भ से सन् 30 के आस-पास सामाजिक चेतना से युक्त जिस साहित्य-धारा का जन्म हुआ, उसे सन् 36 में प्रगतिशील साहित्य अथवा प्रगतिवादी साहित्य अथवा प्रगतिवाद की संज्ञा दी गई । तब से इस नाम के औचित्य-अनौचित्य को लेकर काफी विवाद होने के बावजूद छायावाद के बाद की प्रधान साहित्य-धारा को प्रगतिवाद के नाम से पुकारा जाता है ।" कुछ लोग प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य में भेद करते हैं । उनके अनुसार मानवीय सौंदर्य-शास्त्र का नाम प्रगतिवाद है और आदि काल से लेकर अब तक की समस्त साहित्य-परंपरा प्रगतिशील साहित्य है । दूसरी ओर ऐसे भी कुछ लोग हैं, जो मार्क्सवादी साहित्य-सिद्धांत तथा इस सिद्धांत के अनुसार रचे साहित्य को प्रगतिवाद कहना चाहते हैं और छायावाद के बाद की व्यापक चेतना वाले साहित्य को प्रगतिशील साहित्य कहते हैं, जिनमें विभिन्न राजनीतिक मतों के बावजूद एक सामान्य मानवतावादी भावना व्याप्त है । इस तरह के प्रगतिवाद को संकीर्ण और सांप्रदायिक बतलाते हैं तथा 'प्रगतिशील साहित्य' को व्यापक और उदार ।

उनके अनुसार 'प्रगतिशील लेखक संघ' द्वारा निर्धारित और प्रचलित साहित्य प्रगतिवाद है और शेष प्रगतिशील साहित्य । 'प्रगतिशील साहित्य' अंग्रेजी 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' का हिन्दी अनुवाद है । अंग्रेजी-साहित्य में इस शब्द का प्रचार 1935 ई. के आस-पास विशेष रूप से हो रहा था । ई. एम. फॉर्स्टर के सभापतित्व में पैरिस में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' अंतर्राष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ । भारत में उसके दूसरे साल मुल्कराज आनंद और सज्जाद जहीर के उद्योगवश उस संस्था की शाखा खुली और प्रेमचन्द की अध्यक्षता में लखनऊ में उनका प्रथम अधिवेशन हुआ तो यहाँ भी 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' अथवा 'प्रगतिशील साहित्य' का प्रचार हो गया । इस क्रम से अथवा प्रकारान्तर से यही प्रगतिवाद हो गया ।

27.2. प्रगतिवाद का जन्म और विकास

हिन्दी-साहित्य में प्रगतिवाद का जन्म और विकास सन् 1935 से लेकर सन् 1947 के मध्य हुआ था । यद्यपि हिन्दी-साहित्य में प्रगतिवादी स्वर इससे बहुत पहले उठना आरंभ हो गया था, प्रगतिवाद के इस जन्म और विकास में अनेक विदेशी जनान्दोलनों और विचारधाराओं का भी पर्याप्त योग रहा था । यूरोप में साम्राज्यवादी-पूँजीवादी और समाजवादी विचारधाराओं का संघर्ष चल रहा था । स्पेन का गृहयुद्ध, फ्रांस, जर्मनी और इटली में हुए समाजवादी आंदोलन और उनका दमन इसका प्रमाण है । भारत में भी ये दोनों विचारधाराएँ अपना प्रभाव डाल रही थीं । इसलिए साहित्य पर इनका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । भारत में समाजवादी विचारधारा का राजनीतिक क्षेत्र में प्रभाव निरंतर बढ़ता जा रहा था । हिन्दी के अनेक उदीयमान विचारकों, लेखकों, कवियों आदि ने साहित्य के माध्यम से इस विचारधारा का अंकन करना आरंभ कर दिया था । निराला आदि अनेक पुराने कवियों के काव्य में यह जनवादी स्वर बहुत पहले से उभरना प्रारंभ हो गया था । गद्य में प्रेमचन्द

जैसे कथाकार इस स्वर को सन् 1920 के आस-पास से ही उभारते चले आ रहे थे । परन्तु सन् 1935 तक इस स्वर का कोई एक स्पष्ट, सामूहिक जनवादी रूप नहीं बन पाया था । साहित्यकारों की भावनाएँ जनवादी तो थीं, लेकिन वे नहीं जानते थे कि अत्याचारों से पीड़ित जनता को इस अत्याचार से कैसे मुक्ति दिलाकर एक ऐसे समाज की स्थापना करें जिसमें शोषण और अत्याचार का नामनिशान तक न रहे । प्रगतिवाद ने एक सशक्त, वैज्ञानिक, सुस्पष्ट, व्यावहारिक विचारधारा के रूप में सामने आकर जनवादी कलाकरों की इस दुविधा को दूर कर उन्हें एक निश्चित पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की । छायावाद अपने वैयक्तिक दृष्टिकोण के कारण 'व्यष्टिगत सत्य की समष्टिगत परीक्षा' में अनुत्तीर्ण रहा था । पंत के अनुसार - 'छायावाद के शून्य सूक्ष्म आकाश में अति काल्पनिक उड़ान भरने वाली अथवा रहस्य के निर्जन अदृश्य शिखर पर विराम करनेवाली कल्पना' को जनजीवन का यथार्थ चित्र अंकित करने के लिए 'एक हरी-भरी ठोस जनपूर्ण धरती' की आवश्यकता थी । क्योंकि यह नए युग की नई माँग थी । प्रगतिवाद ने इस माँग को पूरा करने का बीड़ा उठाया । वह छायावाद के वैयक्तिक दृष्टिकोण का विरोध कर समष्टि को अपने साथ समेट कर आगे बढ़ा और उसने साहित्य को पूर्णतः: जनजीवन के साथ ला मिलाया । जिस समय छायावाद अपनी व्यष्टि की साधना में तन्मय, जगत के कटु-यथार्थ से विमुख-सा होकर, आत्मविभोर स्थिति में आगे बढ़ रहा था, उसी समय प्रगतिवाद जगत की नग्न वास्तविकता - 'रोटी का राग' और 'क्रांति की आग' लेकर सामने आया और उसने साहित्यकार को झकझोर कर एक नवीन समस्या, एक नवीन चेतना का आलोक दिखाया । उसने छायावादी अति सूक्ष्म काल्पनिक भावनाओं का विरोध कर उसे स्थूल जगत की कठोर वास्तविकता के सामने ला खड़ा किया । प्रगतिवाद के इस उग्र जनवादी रूप को देखकर साहित्य के रूढ़िवादी और आदर्शवादी कर्णधार उसी प्रकार त्रस्त हो उठे थे, जैसे वे छायावाद के नए रूप को

देखकर चौंके थे । यह विचारधारा बुद्धिजीवियों, नवयुवा साहित्यकारों और समाजवादी विचारों के समर्थकों - सभी को प्रभावित कर रही थी । इस विचारधारा के मूल में समष्टि रूप से दो प्रभाव कार्य कर रहे थे । **पहला प्रभाव** उस विचारधारा का था, जो सब प्रकार के शोषण और अत्याचार का विरोध कर एक समाजवादी समाज की स्थापना का स्वप्न देख रही थी, परंतु उस स्वप्न को साकार रूप देने के लिए जिसके पास कोई एक निश्चित वैज्ञानिक चिंतन और कार्य-पद्धति नहीं थी । कालान्तर में भूदान, सर्वोदय आदि के आंदोलन इसी विचारधारा के प्रभावस्वरूप उत्पन्न हुए थे । जन-समाज के सामूहिक उत्थान में ये आंदोलन कितने एकांगी और अव्यावहारिक प्रमाणित हुए हैं, इतिहास इसका साक्षी है । **दूसरा प्रभाव** उस विचारधारा का था जो साम्यवादी थी । इसके पास समाज की संपूर्ण समस्याओं को हल करने के लिए एक सुनियोजित और वैज्ञानिक कार्य-पद्धति थी । वस्तुतः प्रगतिवादी साहित्य इसी विचारधारा का उपज था । कुछ आलोचकों ने इस साम्यवादी विचारधारा को विदेशी मान उसका उग्र विरोध किया था । उनके मतानुसार यह विचारधारा भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल नहीं थी । दूसरे, इसमें नास्तिकता और हिंसा का स्वर अत्यधिक प्रबल था । इसलिए समझौतावादी धर्माश्रित गांधीवादी अहिंसा के साथ इसका मेल नहीं बैठता था । अतः पुराने रूढ़िपंथी साहित्यकार, जो प्रधानतः गांधीवादी थे, इसका विरोध कर रहे थे । किंतु उस समय तक भारतीय राजनीति में गांधीजी की समझौतावादी अहिंसात्मक राजनीति असफल सिद्ध हो चुकी थी । इसीलिए देश के नए खून ने इस साम्यवादी विचारधारा का मुक्त हृदय से स्वागत करना आरंभ कर दिया । यह विचारधारा एक नया और युगानुरूप उत्साह लेकर सामने आई थी । इसने भारतीयों में वर्षों से व्याप्त असंतोष और विद्रोह की भावना को और अधिक उभार कर उनके सम्मुख एक निश्चित कार्य-पद्धति प्रस्तुत की थी । प्रगतिवाद का मूलाधार **मार्क्सवाद** माना जाता है ।

मार्क्सवाद 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' कहलाता है । मार्क्स के अनुसार सृष्टि में दो तत्व प्रधान हैं - 'स्वीकारात्मक' और 'नकारात्मक' । इन्हीं दोनों तत्वों के संघर्ष का नाम ही जीवन है । इस संघर्ष से चेतना उत्पन्न होती है । चेतना द्वन्द्व का परिणाम है । इस कारण इसे 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' कहा जाता है । इस वाद के अनुसार सृष्टि अपने जन्मकाल से निरंतर विकासमान है । इस विकास के मूल में प्रगतिवादी और प्रतिक्रियावादी तत्वों का पारस्परिक संघर्ष कार्य कर रहा है । इस संघर्ष में प्रगतिवादी तत्वों की क्रमशः विजय के साथ-साथ विश्व निरंतर विकसित होता जाता है । विश्व के विकास में सबसे बड़ी बाधा पूँजीवाद है । इसी पूँजीवाद ने पाश्चात्य साम्राज्यवाद को जन्म दिया था । यह पूँजीवाद साम्राज्यवाद की सहायता से या एकाकी ही संसार के अधिकांश जनों का शोषण करता आ रहा है । इसलिए प्रगतिवाद का मूल उद्देश्य - इस पूँजीवाद का नाश कर संसार में आर्थिक समानता और वर्गहीन समाज की स्थापना करना है, जिसमें न कोई गरीब और न कोई अमीर, न कोई शोषक और न कोई शोषित रहेगा । इसी लक्ष्य या सिद्धांत को साधारण भाषा में 'साम्यवाद' कहा जाता है । हिन्दी-साहित्य में यही विचारधारा 'प्रगतिवाद' कहलाती है । यह साम्यवादी विचारधारा विश्वव्यापी है । हिन्दी-साहित्य में प्रधान रूप से इसी साम्यवादी विचारधारा ने 'प्रगतिवाद' को जन्म दिया था ।

27.3. प्रगतिवाद का मूल सिद्धांत

प्रगतिवाद का मूल सिद्धांत अर्थ के असमान विभाजन को समाप्त कर सभी प्रकार के शोषण का उन्मूलन करते हुए एक ऐसे समाज की स्थापना करना है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को परिश्रम करने और उस परिश्रम द्वारा अपने लिए जीवन की संपूर्ण सामान्य सुख-सुविधाओं को जुटाने की स्वतन्त्रता और अवकाश प्राप्त हो ; जिसमें एक व्यक्ति किसी भी रूप में दूसरे व्यक्ति के श्रम का शोषण न कर सके ।

इसलिए प्रगतिवाद ने उन सभी सामाजिक परंपराओं, राजनीतिक ढ़ाँचों, धार्मिक विश्वासों और विचारधाराओं तथा कला-रूपों का विरोध किया था, जो किसी भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में परिश्रमशील व्यक्ति के शोषण की समर्थक थीं, या उस शोषण में सहायता प्रदान करती थीं । साम्राज्यवाद, सामन्तशाही, जमींदारीप्रथा और पूँजीवादी व्यापार-प्रणाली जन-सामान्य के अबाध शोषण पर आधारित थे । राजा-महाराजा, जमींदार और व्यापारी जनता पर नाना प्रकार के उचित-अनुचित कर लगाकर तथा उसके साथ धोखा कर उसका शोषण करते थे और स्वयं विलास का जीवन बिताते थे । इसलिए प्रगतिवाद इन सबका विरोधी था । प्रगतिवाद किसान-मज़दूरों की एकता और संगठन का प्रबल समर्थक और पूँजीपति, मिल-मालिकों, साहूकारों आदि का उग्र विरोधी था । प्रगतिवाद के इस जनवादी रूप से समाज का धनी-संपन्न शोषक वर्ग आतंकित हो उठा था । प्रगतिवाद प्रबल विरोध के बावजूद तीव्रगति से जन-सामान्य में लोकप्रिय होता चला जा रहा था । उसने समस्त साहित्यिक गतिविधियों को गहरे रूप से प्रभावित किया था ।

27.4. प्रगतिवाद के मूल तत्व

प्रगतिवाद के मूल तत्व संक्षेप में इस प्रकार निर्धारित किये जा सकते हैं -

1. यह जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है ।
2. इसके लिए वह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का विश्लेषण कर, धन को ही संपूर्ण विषमताओं का मूल कारण मान, समाज में उसके समान विभाजन पर बल देता है ।
3. इसका दृष्टिकोण पूर्णतः भौतिकवादी है, इसलिए यह किसी भी अलौकिक या अदृश्य शक्ति ईश्वर, नियतिवाद, परलोकवाद, कर्मवाद, आत्मा की अनश्वरता आदि को मान्यता नहीं देता क्योंकि इनकी कल्पना उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग के शोषण का एक प्रधान साधन रही है ।
4. इसका उद्देश्य पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, सामन्तवाद आदि सभी प्रतिक्रियावादी तत्वों से सम्बद्ध सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक, धार्मिक तथा साहित्यिक रूढ़ियों का विरोध कर ऐसे समाज की स्थापना करना है,

जिसमें सबको उन्नति करने और जीवन की सामान्य सुख-सुविधाएँ प्राप्त करने और भोगने का समान अवसर और अधिकार प्राप्त हो ।

5. यह कला को अभिव्यक्ति का साधन-मात्र मान, उसका सहज बोधगम्य रूप अपनाने पर बल देता है, जिससे सर्वसाधारण उसे समझ सकें । अर्थात्, यह कला को कला के लिए न मान, उसे जीवन के लिए मानता है ।

6. यह साहित्य में व्यक्ति के ऊपर समाज की सत्ता का अंकुश चाहता है ।

यही प्रगतिवाद की मोटी रूप-रेखा मानी जा सकती है, जिसका विशद परिचय निम्नांकित है -

यही प्रगतिवाद की मोटी रूप-रेखा मानी जा सकती है, जिसका विशद परिचय निम्नांकित है -

27.4.1. सामाजिक यथार्थवाद

प्रगतिवादी काव्य में निम्नवर्ग के जीवन की प्रतिष्ठा हुई है । निम्नवर्ग की आर्थिक विषमता की प्रवृत्ति सामाजिक यथार्थवाद की है । इस युग का कवि जीवन के यथार्थ धरातल पर अवतीर्ण होकर समाज के यथार्थ जीवन को देखता है और उसी की अभिव्यक्ति करता है । अतः इस युग के काव्यों में उच्चवर्ग एवं मध्यवर्ग के जीवन का चित्रण न होकर निम्नवर्ग का जीवन चित्रित है । कृषक, मजदूर एवं उनके कच्चे घरों का चित्रण पर्याप्त मात्रा में अंकित है । ग्राम का एक चित्र उदाहरण के लिए यहाँ दिया गया है -

''यह तो मानवलोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित ।
यह भारत का ग्राम संस्कृति-सभ्यता से निर्वासित ।''

27.4.2. सामाजिक समस्याओं का चित्रण

प्रगतिवादी कवियों ने जहाँ देश की सामयिक समस्याओं का निरूपण किया है, वहीं विदेशों की सामयिक समस्याओं को भी महत्व दिया है । इनकी कविताओं में सामयिक जीवन की विभिन्न घटनाओं एवं परिस्थितियों की यथार्थ व्यंजना मिलती

है । भारत-पाक विभाजन, कश्मीर समस्या, बंगाल का अकाल, महँगाई, बेकारी, चरित्रहीनता आदि पर इन कवियों ने मार्मिक कविताएँ लिखी हैं । महात्मा गांधी के निधन पर नागार्जुन की अंतरात्मा आकुल हो उठती है -

''बापू मेरे .....
अनाथ हो गयी भारतमाता .....
अब क्या होगा .....''

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने 'हिरोशिमा' के विध्वंस पर अपने आँसू बहाकर अमेरिका पर आक्रोश व्यक्त किया है -

''हिरोशिमा का शाप ----
एक दिन न्यूयार्क भी मेरी तरह हो जायेगा ;
न्यूयार्क में भी एक दिन कोई नहीं रह पायेगा ;
जिसने मिटाया है मुझे वह भी मिटाया जायेगा ।।''

27.4.3. बौद्धिकता एवं व्यंग्य का प्रसार

प्रगतिवादी युग में बौद्धिकता का स्वरूप जनजीवन की समस्याओं में दिखाई पड़ता है । सामाजिक सुधारवाद की भावना से प्रभावित होकर कवि व्यंग्य को अधिक महत्व देता है । पूँजीवाद को, शोषण की प्रवृत्ति को, आधुनिक राजनीति को, नेतागिरी को तथा आर्थिक विषमता के समर्थकों को वह अपने व्यंग्य का माध्यम बनाता है । नागार्जुन ने कागजी स्कीम की आजादी पर कटु व्यंग्य किया है । -

''कागज की आजादी मिलती,
ले लो दो-दो आने में ।''

27.4.4. रूढ़ि-विरोध

प्रगतिवादी कवि आत्मा, परमात्मा, सृष्टि एवं जन्मांतर में विश्वास नहीं करता । जातीयता एवं सांप्रदायिकता उसके लिए निरर्थक है । वह ईश्वर तथा धर्म के नियमों में विश्वास नहीं करता । सामाजिक अंधविश्वासों, परंपराओं एवं रूढ़ियों का वह प्रारंभ से ही विरोध करता चला आ रहा है । वह मानव को मानव के रूप में ही

देखना चाहता है -

''किसी को आर्य, अनार्य,
किसी को यवन,
किसी को हूण-यहूदी-द्रविड़,
मनुज को मनुज न कहना आह !''

27.4.5. शोषितों का करूण गान

प्रगतिवादी कवियों ने आज की आर्थिक विषमता से पूर्ण मानव-सभ्यता को शोषक (पूँजीपति) एवं शोषित (श्रमिक) वर्गों में विभक्त किया है । शोषकों द्वारा शोषित किए जानेवाले श्रमिकों, मजदूरों एवं किसानों का कारूणिक चित्र प्रगतिवादी काव्यकारों द्वारा प्रस्तुत किया गया है । अंचल ने पूँजीपतियों की शोषणप्रवृत्ति के विरोध में विद्रोह भावना व्यक्त की है -

''कब तक पशुता के प्रतीक वे जुल्म करेंगे, दुःख देंगे
अपनी स्वार्थ-साधना में मानव-समाज की बलि लेंगे ।
हनन करेंगे कब तक सबके सुख को कुछ के सुख पर,
कब तक वे तेजाब उडेलेंगे मानव के मुख पर ।''

27.4.6. शोषकों के प्रति घृणा और रोष

आधुनिक मानव-सभ्यता दो वर्गों-शोषक एवं शोषित-में विभक्त है । प्रगतिवादी कवियों ने शोषितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है, किंतु शोषकों के प्रति उनकी घृणा-भावना दिखाई पड़ती है । इनके अनुसार जब तक पूँजीवादी व्यवस्था कायम रहेगी, इन शोषितों का कभी उद्धार न हो सकेगा । अतः कहीं-कहीं समाज की इस आर्थिक विषमता को नष्ट करने के लिए पूँजीपतियों के विरूद्ध आग भी उगली गई है । उदाहरणार्थ दिनकर की पंक्तियाँ निम्नांकित हैं -

''श्वानों को मिलता वस्त्र-दूध, भूखे बालक अकुलाते हैं ।
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं ।।
युवती के लज्जा-बसन बेच जब ब्याज चुकाए जाते हैं ।
मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं ।।''

27.4.7. क्रांति की भावना

प्रगतिवादी कवि प्राचीन रूढ़ियों एवं परंपराओं के प्रति क्रांति की भावना तो रखता ही है, साथ ही सामंती व्यवस्था एवं पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति भी क्रांति की भावना रखता है । वह इन व्यवस्थाओं के विध्वंस एवं समूल नाश के लिए क्रांति का आह्वान करता है । एक कविता की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

''कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल-पुथल मच जाए ।''

27.4.8. मार्क्स एवं रूस का गुणगान

प्रगतिवादी कवियों ने साम्यवाद के प्रवर्तक मार्क्स एवं रूस का महत्व स्वीकार किया है तथा उनकी प्रशंसा करते हुए कविताओं का सर्जन भी किया है । इतना तो सभी स्वीकार करते हैं कि प्रगतिवादी साहित्य मार्क्सवाद से पूर्णतः प्रभावित है । अतः, मार्क्स एवं रूस का गौरवगान होना आवश्यक है । पंत ने मार्क्स की प्रशस्ति में लिखा है -

''धन्य मार्क्स, चिर तमाच्छन्न पृथ्वी के उदय-शिखर पर ।
तुम त्रिनेत्र के ज्ञानचक्षु-से प्रकट हुए प्रलयंकर ।।''

नरेन्द्र शर्मा ने भी रूस की प्रशस्ति में लिखा है -

''लाल रूस का दुश्मन साथी, दुश्मन सब इन्सानों का ।''

27.4.9. सांस्कृतिक समन्वय की भावना

प्रगतिशील लेखकों ने एक नवीन विश्व-संस्कृति की परिकल्पना की है । उसी को आधार बनाकर प्रगतिवादी कवियों ने एक समन्वयात्मक संस्कृति को जन्म दिया । पंतजी ने महर्षि अरविंद के चेतनावाद एवं मार्क्स के साम्यवाद का समन्वय करते हुए सांस्कृतिक समन्वय की चेष्टा की है -

''क्षुद्र व्यक्ति को विकसित हो अब बनना है जन-मानव ।
सामूहिक मानव को निर्मित करनी है नव संस्कृति ।''

27.4.10. मानवता की महत्ता

प्रगतिवादी कवि मानवता की असीमित शक्ति में विश्वास रखता है । अतः, ईश्वर के अस्तित्व का उसे न तो बोध ही हो सका और न विश्वास ही । वह तो मानवता का उद्धार करना चाहता है । भिखमंगों, किसानों, मजदूरों, वेश्याओं, विधवाओं और असहाय नारियों के उद्धार में ही वह लगा रहा है । नारी को वह वासना की पूर्ति मात्र नहीं समझता । वह उसमें उज्ज्वल एवं पवित्र आत्मा के दर्शन भी करता है -

''योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित ।
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित ।''

27.4.11. कलापक्ष

प्रगतिवादी कवियों की भाषा और शैली में प्रगति के दर्शन होते हैं । प्रादेशिक बोलियों में भी कविताओं का सृजन किया गया । भाषा को सुबोध और सरस बनाना इनका लक्ष्य था । छंदों की दृष्टि से भी इन्होंने प्रगति की । लोकगीतों की शैली में नई धुनों की सर्जना की गई और छंद के बंधन खोल दिये गये । अलंकार के क्षेत्र में रूढ़ उपमानों का परित्याग कर नवीन रूपक, उपमान एवं प्रतीकों का चयन किया गया । पंत जी ने यहाँ तक कहा है कि -

''तुम वहन कर सको जन-जन में मेरे विचार ।
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार ।''

27.5. रामधारी सिंह 'दिनकर'

दिनकरजी का जन्म 1965 वि. में बिहार के मुंगेर जिलांतर्गत सिमरियाघाट

नामक ग्राम में हुआ । काव्यरचना की ओर इनकी प्रवृत्ति बचपन से ही थी । प्रारंभ में इन्होंने लोकगीतों में रचना प्रारंभ की । इन पर रामनरेश त्रिपाठी की रचना ''पथिक'' और गुप्तजी की ''भारत-भारती'' का विशेष प्रभाव पड़ा । दिनकरजी ने स्वयं लिखा भी है कि - ''मेरी आज की भावनाओं का मूल'पथिक', 'भारत-भारती', 'छात्र-सहोदर' की राष्ट्रीय कविताओं और 1921 ई. के असहयोग-आंदोलन में है ।'' दिनकरजी का निधन 24 अप्रैल 1974 ई. में हुआ । दिनकरजी की कविताओं में देशप्रेम, राष्ट्रीयता और मानवतावाद की भावनाओं का प्राचुर्य है । इनके काव्यों में शोषित समाज के प्रति करूण सहानुभूति तथा उच्चवर्ग के प्रति आक्रोश की भावना है । इनके सर्वप्रथम ग्रंथ''रेणुका'' में इनकी मानवतावादी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । ''हिमालय'' में क्रांति की भावना विद्यमान है । कवि शोषक एवं शोषित समाज को नष्ट कर वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं । इस भावना का प्रौढ़ रूप ''हुंकार'' और ''सामधेनी'' में तथा इसका पूर्ण विकसित रूप ''कुरूक्षेत्र'' में गोचर होता है । दिनकरजी की राष्ट्रीय भावना अतीत और वर्तमान को आधार मानकर अभिव्यक्त हुई है । कवि अतीत को ऐश्वर्यपूर्ण सुखद एवं आनंदपूर्ण मानते हैं और वर्तमान को संघर्ष एवं कोलाहल से भरा हुआ । ''रेणुका'' में इनका अतीत-प्रेम मार्मिक ढ़ंग से प्रस्तुत हुआ है । ''हिमालय'' की निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं -

''तू पूछ अवध से राम कहाँ ?
वृंदा बोलो, घनश्याम कहाँ ?

ओ मगध ! कहाँ रे अशोक ?
वह चंद्रगुप्त बलधाम कहाँ ? ''

दिनकरजी ने अतीत के जो चित्र खींचे हैं, उनके भावों में विस्तार तो है, किंतु गांभीर्य नहीं । अतीत की अपेक्षा इनका वर्तमान- वर्णन अधिक सफल हुआ है । ''हुंकार'' में

वर्तमान के चित्रण के माध्यम से दिनकरजी ने वर्तमान के दुःख और दैन्य का यथार्थ चित्र अंकित किया है । भगवान भी इन गरीबों की भलाई नहीं करना चाहता । वह तो पूँजीपतियों के संगमरमरी मंदिरों में हलुआ और पूरी खाकर मस्त पड़ा रहता है । उसे दीन-दुःखियों की ओर देखने की फुर्सत नहीं मिलती । ''रेणुका'' की पंक्तियों में कवि भगवान् पर भी व्यंग्य कसने से नहीं चूकते -

''शबरी के जूठे बेरों से आज राम को प्रेम नहीं ।
मेवा छोड़ शाक खाने का आज पुरातन नेम नहीं ।''

कवि को इतने से ही संतोष नहीं होता । ''हुंकार'' की पंक्तियों में वे भगवान पर तो व्यंग्य कसते ही हैं, साथ ही पूँजीपतियों की धज्जी उड़ाने से भी नहीं चूकते -

''दूध-दूध ! ओ वत्स, मंदिरों में बहरे पाषाण यहाँ हैं ।
दूध-दूध ! तारे बोलो, इन बच्चों के भगवान कहाँ हैं ?
X X X X X X X
''श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं ।
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं ।
युवती के लज्जा-बसन बेच जब ब्याज चुकाए जाते हैं ।
मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं ।
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमंत्रण ।।''

''हुंकार'' की पंक्तियों में दुःख-दैन्य से ऊपर उठकर कवि अंतर्राष्ट्रीय विषम परिस्थितियों के प्रति भी अपनी सहानुभूति व्यक्त करते हैं । यह सहानुभूति क्रांति-भावना के रूप में व्यक्त हुई है । ''कस्मै देवाय'' में कविता को क्रांतिधात्री बनाकर कवि कहते हैं -

''क्रांतिधात्रि, कविते ! जाग उठ, आड़म्बर में आग लगा दे,
पतन-पाप-पाखंड जलें, जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे ।''

''सामधेनी'', ''रश्मिरथी'' तथा ''कुरूक्षेत्र'' में दिनकरजी का विश्वप्रेम समाया हुआ है । ''कुरूक्षेत्र'' में 'युद्ध और शांति' की समस्या पर मानवतावादी विचारधारा के माध्यम से प्रकाश डाला गया है । मानव को युद्ध से विरत कर शांति की ओर प्रेरित

करना उनका प्रमुख लक्ष्य है । इसमें कवि का दृष्टिकोण पूर्णतः मानवतावादी है । कवि मानवमात्र के लिए शांति और सुख का अनुसंधान करते हैं । हार और जीत दोनों के प्रति वे उदासीन हैं -

''हार से मनुष्य की न महिमा घटेगी और
तेज न बढ़ेगा किसी मानव का जीत से ।''

''उर्वशी'' दिनकरजी का एक ऐसा महाकाव्य है, जिसकी बहुपक्षीय चर्चा हुई है । यह दिनकरजी का सर्वश्रेष्ठ सौंदर्यचेतनान्वित प्रबंधकाव्य है । प्रस्तुत कृति पाँच अंकों में समाप्य एक काव्यरूपक है । इसका केन्द्रीय भाव है - प्रेम । प्रेम की ऐसी रसमय विवृति शायद ही अन्यत्र पाई जाए । पहली बात तो यह है कि यह समर्थ प्राणियों का प्रेम है । पुरूरवा एक प्रतापशाली सम्राट है । उर्वशी स्वर्ग की एक ऐसी महिमामयी अप्सरा, जिसका सौंदर्य कभी क्षीण नहीं होता । प्रणय व्यापार प्रकृति के रम्यतम वातावरण में चलता है । यह प्रेम केवल शरीर तक सीमित न रहकर मन और आत्मा के शिखरों का स्पर्श करता है । नारी और नर के मिलन के ये क्षण अपनी चित्रमयता और रसानुभूति में अनुपम और बेजोड़ हैं । इस काव्यरूपक में दो गृहिणियाँ हैं - च्यवन ऋषि की पत्नी सुकन्या और पुरूरवा की महारानी औशीनरी । इन दोनों में वात्सल्य और मातृत्व का विकास कवि ने उपयुकत प्रसंगों द्वारा प्रदर्शित किया है । अतः, ग्रंथ में केवल भोग का व्याख्यान नहीं है, वह मातृत्व का भी वंदन करता है । इतना होते हुए भी ''उर्वशी'' में प्राधान्य स्वच्छंद प्रेम का ही है । ''उर्वशी'' को प्रेम का महाकाव्य कह सकते हैं । सौंदर्य, प्रेम और दर्शन के क्षेत्र में जिस चमत्कार, आनंद और उल्लास-भाव की अंतःसलिलाओं की सृष्टि इस कृति में हुई है, उससे दिनकरजी की काव्य-विधायिनी सर्जनात्मक कल्पना-शक्ति का पता चलता है । ''उर्वशी'' को किसी दृष्टि से देखें, वह स्थायी महत्व की कृति ठहरती है । संक्षेप में, चिरंतन नर-नारी का यह प्रेमाख्यान प्रसन्न मानस की उज्ज्वलतम

रसमयी हिलोर है । दिनकरजी का प्रस्तुत प्रेम-महाकाव्य भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत-सम्मानित हो चुका है ।

उपर्युक्त काव्यग्रंथों के अतिरिक्त दिनकरजी ने ''मिट्टी की ओर'', ''अर्द्धनारीश्वर'', ''रेती के फुल'', ''संस्कृति के चार अध्याय'' आदि गद्यग्रंथ भी लिखे हैं । दिनकरजी की काव्य-शैली प्रबंध और मुक्तक-दो रूपों में मिलती है । ''कुरूक्षेत्र'' उनका सर्वश्रेष्ठ प्रबंधकाव्य है । इसमें अनुभूति, कल्पना और बुद्धितत्व-तीनों का प्राधान्य है । इनके काव्यों में वीर, रौद्र, करूण, शांत और श्रृंगार रसों का प्राधान्य पाया जाता है । अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग अधिक है । दिनकाजी की भाषा साहित्यिक खड़ीबोली है । इनकी खड़ीबोली कहीं तो विशुद्ध साहित्यिक है और कहीं फारसी से प्रभावित । इनकी भाषा में व्याकरण-संबंधी दोष कुछ खटकते हैं, फिर भी मुहावरा आदि के प्रयोग से भाषा को समृद्ध बनाया गया है । दिनकरजी इस काव्यधारा के मूर्धन्य हस्ताक्षर हैं ।

27.6. प्रगतिवाद का मूल्यांकन

हिंदी के अनेक शीर्षस्थानीय समीक्षकों ने प्रगतिवाद का मूल्यांकन करते हुए उसकी उपलब्धियों और न्यूनताओं का विवेचन किया है । पं.नन्ददुलारे वाजपेयी ने उस पर एकांगी दृष्टिकोण का आरोप लगाते हुए लिखा कि - ''इसकी सीमा में साहित्य के जो समाज - शास्त्रीय विवेचन होते हैं, वे आवश्यकता से बहुत अधिक समाज-शास्त्रीय हैं और आवश्यकता से बहुत कम साहित्यिक । इस कारण मार्क्सवादी समीक्षा-पद्धति साहित्य के भावात्मक और कलात्मक मूल्यों का निरूपण करने में सदैव पश्चात्पद रही है ।'' इसका उत्तर देते हुए प्रसिद्ध प्रगतिवादी आलोचक डॉ.रामविलास शर्मा ने लिखा कि - ''मार्क्सवाद पर जो एकांगी होने का दोष लगाया गया है, वह वस्तुगत सत्य नहीं है । मार्क्सवाद हमें संसार की घटनाओं

को उनकी परस्पर सम्बद्धता में देखने के लिए कहता है । वह सामाजिक विकास के नियमों से हमें परिचित कराता है और उनके प्रकाश में अपने युग की गतिविधि को पहचानने में हमारी सहायता करता है । '' अंत में वाजपेयीजी को भी स्वीकार करना पड़ा था कि ''साहित्य के सामाजिक लक्ष्यों और उद्देश्यों का विज्ञापन करने वाली यह पद्धति साहित्य का बहुत कुछ उपकार भी कर सकी है । उसने हमारे युवकों को एक नई तेजस्विता भी प्रदान की है और एक नया आत्मबल भी मिला है । ..... हम यह भी नहीं कहते कि प्रगतिवादी समीक्षा ने हिन्दी को कुछ दिया ही नहीं । उसने दो वस्तुएँ मुख्य रूप से दी हैं : **प्रथम** यह है कि काव्य साहित्य का समन्वय सामाजिक वास्तविकता से है और वही साहित्य मूल्यवान है जो उक्त वास्तविकता के प्रति सजग और संवेदनशील है । **द्वितीय** यह कि जो साहित्य सामाजिक वास्तविकता से जितना ही दूर होगा, वह उतना ही काल्पनिक और प्रतिक्रियावादी कहा जायेगा । न केवल सामाजिक दृष्टि से वह अनुपयोगी होगा, साहित्यिक दृष्टि से भी हीन और ह्रासोन्मुख होगा । इस प्रकार साहित्य के सौष्ठव-संबंधी एक नई मापरेखा, एक नया दृष्टिकोण इस पद्धति ने हमें दिया है जिसका उचित उपयोग हम करेंगे ।'' बाबू गुलाबराय ने इस काव्य धारा की उपलब्धियों का मूल्यांकन करते हुए लिखा कि - ''प्रगतिवाद हमें स्वार्थ-परायण व्यक्तिवाद से हटाकर समष्टिवाद की ओर ले गया है । उसने लेखकों को शैया-सेवी अकर्मण्य नहीं रखा है ।'' आचार्य हमारीप्रसाद द्विवेदी ने प्रगतिवादी साहित्य की सम्भावनाओं के प्रति आशान्वित होकर कहा कि - ''इनके सिद्धांत और उद्देश्य बहुत सुंदर हैं, लेकिन ये लोग कम्युनिस्ट पार्टी के साथ जुड़े हुए हैं, यही ज़रा खटकता है । यदि ये लोग दल द्वारा परिचालित होना छोड़ दे तो सब ठीक हो जाय ।.....प्रगतिशील आंदोलन बहुत महान् उद्देश्य से चालित है । इसमें सांप्रदायिक भाव का प्रवेश नहीं हुआ तो इसकी सम्भावनाएँ अत्यधिक हैं । भक्ति-आंदोलन के समय जिस प्रकार एक अदम्य, दृढ़

आदर्श निष्ठा दिखाई पड़ी थी, जो समाज को नए जीवन-दर्शन से चलित करने का संकल्प वहन करने के कारण अप्रतिरोध्य शक्ति के रूप में प्रकट हुई थी, उसी प्रकार यह आंदोलन हो सकता है ।'' द्विवेदीजी की यह कामना भी पूर्ण हो चुकी है - प्रगतिशील कलाकारों पर से साम्यवादी दल का अंकुश हट गया है । सभी प्रगतिशील कलाकारों ने स्वतंत्र रूप से साहित्य रचना की, जिसमें प्रधानतः शोषण, असमान आर्थिक विभाजन, प्रतिक्रियावादी सामाजिक रूढ़ियों, भ्रष्टाचार, अन्याय, अत्याचार आदि का विरोध और नए स्वस्थ मानव-समाज के निर्माण की बलवती आकांक्षा अभिव्यक्त हुई । यह गलत धारणा है कि आज प्रगतिवाद समाप्त हो गया है । आज भी प्रगतिशील समाजवादी विचारधारा साहित्य की सशक्त प्रेरणा बनी हुई है ।

27.7. प्रयोगवाद का जन्म और विकास

जब हिन्दी-साहित्य प्रगतिवादी विचारधारा से आन्दोलित हो रहा था तो समाज की संपूर्ण प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने एकाकी और संगठित - दोनों रूपों में उस पर विभिन्न प्रकार के लांछन लगाते हुए उसका विरेध करना आरंभ कर दिया था । मजदूरों और किसानों के शोषण पर फूलने -फलने वाले पूँजीपतियों, धर्म के नाम पर गुलछर्रे उड़ाने वाले धर्म के ठेकेदारों और भ्रष्टाचार द्वारा जनता का खून चूसने वाले नौकरीपेशा वर्ग ने इस समाजवादी जन-चेतना के रूप में अपने अस्तित्व को नष्ट कर देनेवाले खतरे का आभास पाया, इसलिए इन लोगों द्वारा इस विचारधारा का विरोध किया जाना स्वाभाविक था । प्रगतिवाद साहित्यकार को समाज के प्रति उत्तरदायी मान साहित्य में व्यक्तिगत भावनाओं की अपेक्षा सामूहिक सामाजिक भावनाओं के चित्रण पर बल देता है । इसलिए उन साहित्यकारों ने भी इस विचारधारा का विरोध करना आरंभ कर दिया, जो साहित्य को मात्र वैयक्तिक

भावनाओं की अभिव्यक्ति का ही माध्यम मानते थे । फलतः इन लोगों ने साहित्य में अपनी कुंठित, अतृप्त भावनाओं का चित्रण करना प्रारंभ किया । इन्होंने साहित्यकार के अभिव्यक्त-स्वातंत्र्य की माँग उठाई और यह कहा कि साहित्यकार को किसी भी विचारधारा-विशेष से न, बँधकर स्वच्छन्द रूप से अपनी वैयक्तिक भावनाओं को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए । और इसी को अपना सिद्धांत मान कुछ नए लोगों ने साहित्य-सृजन आरंभ किया । परंतु उस समय साहित्य में प्रगतिवाद का बोलबाला था । और प्रगतिवाद जन-कल्याण का प्रबल समर्थक और अन्याय-शोषण-अत्याचार का कट्टर विरोधी होने के कारण अत्यधिक लोकप्रिय था । इसलिए इन लोगों को यह आशंका थी कि प्रगतिवाद की लोकप्रियता के सम्मुख उनके साहित्य की पूछ नहीं होगी । इसके लिए, पाठकों को आकर्षित करने के लिए इन लोगों ने एक तरफ तो कुछ प्रगतिवादी साहित्यकारों का सहयोग लिया, अपनी रचनाओं के साथ उनकी प्रगतिवादी रचनाएँ प्रकाशित कीं और दूसरी ओर साहित्यिक चमत्कारवाद का सहारा लिया । पाठकों को चौंकाने के लिए इन्होंने यह प्रचार किया कि हमारा साहित्य और उसकी माध्यम भाषा - दोनों ही अत्यधिक रूढ़िग्रस्त और अगतिशील रूप धारण कर चुके हैं, वे नवीन अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ हैं, इसलिए इनका बहिष्कार कर नए-नए प्रयोग करने चाहिए । और इन लोगों ने नए-नए अप्रचलित शब्दों, वाक्यों, प्रतीकों, बिम्बों का प्रयोग करना प्रारंभ कर दिया । पाठक इन नए प्रयोगों को देखकर चौंके और साहित्य में इन लोगों की चर्चा होनी आरंभ हो गई । और यही ये लोग चाहते थे । हिन्दी में इस प्रकार के साहित्य को 'प्रयोगवाद' कहा गया । सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' हिन्दी में प्रयोगवाद के जन्म दाता माने जाते हैं । हिंदी में प्रयोगवाद का जन्म साधारणतः सन् 1943 में प्रकाशित एक काव्य-संग्रह 'तार सप्तक' से माना जाता है । इसके सम्पादक अज्ञेय थे । इसमें निम्नलिखित सात कवियों की कविताएँ संग्रहीत हैं -

गजानन मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र, भारतभूषण, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर, डॉ. रामविलास शर्मा और अज्ञेय । इस संग्रह की अज्ञेय द्वारा लिखित भूमिका और विभिन्न कवियों के नए विचारों, भावनाओं और काव्य प्रयोगों से युक्त कविताओं ने तथा अज्ञेय द्वारा किए जाने वाले इसके प्रचार ने इसके प्रति हिन्दी-संसार का ध्यान आकर्षित कर लिया । इसमें हुए नए प्रयोगों को देखकर ही इसे एक प्रकार से प्रयोगवादी संग्रह मान लिया गया था । अज्ञेय द्वारा लिखी गई इसकी भूमिका से यह ध्वनि निकलती थी कि अज्ञेय ने हिन्दी के इन नए कवियों को, जो साहित्य में प्रतिष्ठापित नहीं हुए थे, एक स्थान पर एकत्र कर उन्हें प्रकाशन और प्रसिद्धि देने की अनुकम्पा की थी । दूसरी ध्वनि यह निकलती थी कि ये सभी कवि अभी तक अपना कोई निश्चित लक्ष्य नहीं बना पाए थे । अज्ञेय का यह संरक्षक जैसा स्वर इन कवियों को अच्छा नहीं लगा । डॉ. रामविलास शर्मा जैसे कवियों ने अज्ञेय के इस दृष्टिकोण का घोर विरोध करते हुए इस नवीन प्रतिस्थापित 'प्रयोगवाद' की कटु आलोचना की । इधर प्रकाशित 'तार सप्तक' के द्वितीय संस्करण में, इसमें संग्रहीत कवियों ने पुनः अपने-अपने वक्तव्य दिये हैं, जिसमें अज्ञेय के नेतृत्व को चुनौती देते हुए उन कारणों पर प्रकाश डाला है जो उक्त संग्रह को जन्म देने के कारण बने थे । इनमें से अधिकांश ने अज्ञेय द्वारा की गई प्रयोगवाद की व्याख्या और उद्देश्य का दृढ़तापूर्वक खंड़न किया है । इस संबंध में यह तथ्य विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि इस संग्रह में संग्रहीत कविताएँ अधिक चर्चा का विषय न बन, इसकी अज्ञेय द्वारा लिखी गयी भूमिका ही अधिक चर्चित रही थी । अपने तथाकथित अनुयायियों के इस विद्रोह को देख अज्ञेय ने सन् 1951 में 'दूसरा सप्तक' सम्पादित और प्रकाशित किया । इसमें निम्नलिखित सात कवि सम्मिलित थे - भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती । इन कवियों में भी विचारधाराओं का वैभिन्य था । शमशेर

बहादुर सिंह आदि नवीन प्रयोगों के मोह से ग्रस्त होते हुए भी विचारों से प्रगतिवादी थे । परन्तु फिर भी इस संग्रह में प्रयोगवाद का रूप अधिक स्पष्ट और गहरा था । वस्तुतः इसी संग्रह को पहला प्रयोगवादी-संग्रह मानना चाहिए । इसके उपरांत अज्ञेय ने 1959 में 'तीसरा सप्तक' संग्रहीत और प्रकाशित किया, जिसमें - प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायान, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताएँ संग्रहीत थीं । ये सभी कवि प्रयोगवाद के कट्टर समर्थक और प्रचारक बने ।

27.8. प्रयोगवाद का मूल उद्देश्य

प्रयोगवाद घोर व्यक्तिवादी विचारधारा है, जो अपने नए-नए प्रयोगों और कला-चमत्कारों द्वारा अपनी वैयक्तिक कुंठाओं का प्रकाशन कर पाठकों को चमत्कृत कर अपनी ओर आकर्षित करने में अत्यंत पटु है । प्रयोगवादी कलाकारों ने ऐसे साहित्य का सृजन किया है, जो जनवादी हो या न हो, परंतु विलक्षण, अद्‌भुत, दुरूह और ऐसा अवश्य हो, जिसे पढ़कर पाठक आश्चर्यचकित हो उठे ; चाहे उसे समझ पाये या न समझ पाये, परंतु यह अवश्य कहे कि नई बात कही है । यह प्रयोगवाद का ऊपरी उद्देश्य है । उसका आंतरिक उद्देश्य - कलाकरों और पाठकों को समाजवादी विचारधारा के प्रभाव से मुक्त कर उन्हें घोर व्यक्तिवादी बना देना रहा है । यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह आन्तरिक उद्देश्य केवल प्रयोगवाद के कर्णधारों तक ही सीमित रहा था । प्रयोगवादियों ने प्रयोगवाद के उद्देश्य या उद्देश्यों की व्याख्याएँ कर उसे स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । इस संबंध में प्रयोगवाद के प्रमुख व्याख्याता लक्ष्मीकान्त वर्मा का कथ्ंन द्रष्टव्य हे - "प्रयोग की अनुभूति उन क्षेत्रों की अन्वेषण-प्रवृत्ति है, जिन्हें अभेद्य या निरपेक्ष या अन्वेषणेतर मानकर छोड़ दिया गया था । प्रयोगवाद 'ज्ञात' और 'अज्ञात' की ओर

बढ़ने की बौद्धिक जागरूकता है । यह जागरूकता 'व्यक्ति-सत्य' और 'व्यापक-सत्य' के स्तरों पर व्यक्ति की अनुभूति की सार्थकता को भी महत्वपूर्ण मानती है । प्रयोगवाद व्यक्ति-अनुभूति की शक्ति को मानते हुए समष्टि की संपूर्णता तक पहुँचने का प्रयास है । परंपरा केवल यही सिखाती है कि व्यक्ति-अनुभूति का कोई विशेष महत्व नहीं है, महत्व की वस्तु व्यापक सत्य, समष्टि का सत्य ही है । इसीलिए परंपरा अपनी रूढ़ि में अन्वेषण और परीक्षण को महत्वहीन मानती है । परंपरावादी स्थापित सत्य से आगे बढ़ने में शंकाएँ प्रस्तुत करता है । प्रयोगवाद व्यक्ति-सत्य और व्यापक-सत्य अथवा व्यक्ति-अनुभूति और समष्टि-अनुभूति को एक ही सत्य के दो रूप मानता है । प्रयोगवाद एक ओर व्यक्ति-अनुभूति को समष्टि अनुभूति तक उत्सर्ग करने का प्रयास है, तो दूसरी ओर वह रूढ़ि का विरोधी और अन्वेषण का समर्थक है ।'' इसके आगे वे नए प्रयोगों की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि - ''रूढ़ि की अक्षमता ही प्रयोग के नए अंकुरों को विकसित करने के लिए बाध्य करती है । ऐसा इसलिए होता है क्योंकि समय के साथ विकसित यथार्थ भाव-बोध स्थापित मान्यताओं से इतने आगे होते हैं कि वे इस यथार्थ के संपूर्ण भाव-स्तर को वहन करने में असमर्थ होते हैं । प्रगतिवाद, यदि इस दृष्टि से देखा जाय, तो परम्परा की असमर्थता में साहित्यकार की जिज्ञासामय अभिव्यक्ति का साधन है ।'' वैयक्तिक अनुभूति समष्टि की अनुभूति का ही प्रकाशन होती है । यदि कलाकार इस सत्य को भुला देता है तो सत्साहित्य का निर्माण करने में असमर्थ रहता है । प्रयोगवाद के प्रमुख कवि और प्रबल समर्थक डॉ.जगदीश गुप्त का कहना है कि प्रयोगवादी काव्य जन-सामान्य के लिए न होकर केवल प्रबुद्ध चेताओं के लिए ही है । प्रयोगवादी काव्य बौद्धिकता-प्रधान है और जन-सामान्य के लिए न होकर प्रयोगवाद के समान-धर्मा प्रबुद्ध जनों के लिए ही है । यह साहित्य, इन्हीं के अनुसार, एक वर्ग-विशेष के लिए निर्मित एक विशेष प्रकार का साहित्य है ।

27.9. प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में प्रयोगवाद के विभिन्न नाम मिलते हैं, जिनमें प्रतीकवाद, प्रपद्यवाद, रूपवाद आदि प्रसिद्ध हैं । प्रयोगवाद हिंदी कविता में प्रगतिवाद के समांतर ही पनपा । प्रगतिवाद में व्यक्तिवाद की घोर अहंवादी परिणति ने प्रयोगवाद को जन्म दिया । इस काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नांकित हैं -

27.9.1. अहंवादी प्रवृत्ति का प्राधान्य

प्रयोगवादी कवि की अंतरात्मा अहंवादी प्रवृत्ति से बद्ध है । वह समाज से अलग एकांत में अपना जीवन व्यतीत करना अधिक श्रेयस्कर समझता है । वह घोर व्यक्तिवादी है । अतः समाज के साथ अपना सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकता । साधारणतः प्रयोगवादी कविताओं में एक दयनीय प्रकार की झुँझलाहट, खीझ, कुंठा, किशोर-औद्धत्य और हीनभाव भी व्यक्त हुआ है , जो कवि के व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक नहीं, अपितु विघटनकर्ता ही है । वैयक्तिकता का एक उदाहरण है -

''तब मैं एकाग्रमन
जुट गया ग्रंथों में
मुझे परीक्षाओं में विलक्षण श्रेय मिला ।''

27.9.2. यथार्थवाद का आग्रह

प्रयोगवादी कविताओं में अतियथार्थवाद की प्रवृत्ति के विशेष दर्शन होते हैं । कहीं-कहीं तो दूषित मनोवृत्तियाँ अपनी चरम सीमा को पार कर जाती हैं । प्रयोगवादी कवि दमित वासनाओं एवं कुंठाओं के चित्रण में अधिक आनंद प्राप्त करता है ; यही कारण है कि उसकी कविताओं में सामाजिकता का अभाव है । प्रेम का तनिक भी उदात्त रूप नहीं मिलता । ऐसा प्रतीत होता है कि कवि सेक्स-संबंधी वर्जनाओं से आक्रांत है । उसका मस्तिष्क दमित सेक्स की भावनाओं से भरा है ।

नारी की अधोगति का पता निम्नलिखित पंक्तियों से चलता है -

''आह मेरा श्वास है उत्तप्त --
धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार --
प्यार है अभिशप्त
तुम कहाँ हो नारि ?''

27.9.3. निराशावाद

प्रयोगवादी कवि वर्तमान के कुहासे से घिरा है । उसका दृष्टिकोण वर्तमान जगत् के प्रति निराशावादी ही है । वह तो **'कल-कल से बेकली है, मुझे कल से कल नहीं'** वाले सिद्धांतों पर विश्वास कर कल (भविष्य) पर भरोसा ही नहीं रखता । डॉ.गणपतिचन्द्र गुप्त के शब्दों में, ''प्रयोगवादी कवि की स्थिति उस व्यक्ति की भाँति है जिसे यह विश्वास हो कि अगले क्षण प्रलय होनेवाला है, अतः वह वर्तमान क्षण में सब-कुछ प्राप्त कर लेना चाहता है ।'' उदाहरणार्थ-

''आओ हम उस अतीत को भूलें,
और आज की अपनी रग-रग के अंतर को छू लें !''

27.9.4. बौद्धिकता का प्राधान्य

प्रयोगवादी कवि भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता को प्राधान्य देता है । धर्मवीर भारती ने इनके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है - ''प्रयोगवादी कविता में भावना है ; किंतु हर भावना के सामने एक प्रश्नचिह्न लगा हुआ है । इसी प्रश्नचिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं । सांस्कृतिक ढाँचा चरमरा उठा है और यह प्रश्नचिह्न उसी की ध्वनिमात्र है ।'' उदाहरण के लिए 'अज्ञेय' की ''हरी घास पर क्षण-भर'' नामक कविता द्रष्टव्य है -

''चलो उठें अब
अबतक हम थे बंधु
सैर को आए --
और रहे बैठे तो

लोग कहेंगे
धुँधले में दुबके दो प्रेमी बैठे हैं
वह हम हों भी
तो यह हरी घास ही जाने !''

27.9.5. उपमानों की नवीनता

प्रयोगवादी कवियों ने प्राचीन रूढ़ उपमानों के स्थान पर नवीन उपमान, नवीन रूपक तथा नवीन अलंकार खोज निकाले हैं । यौन-संबंधी वर्जनाओं की अभिव्यक्ति के लिए नाना प्रतीकों का प्राश्रय लिया गया है । कुछ नवीन उपमानों का उदाहरण निम्नांकित है -

''प्यार का बल्ब फ्यूज हो गया है ।
मेरे सपने इस तरह टूट गए, जैसे भुँजा हुआ पापड़ ।
वह रेशमी मिठास मिलन के प्रथम दिनों की ।
पूर्व दिशि में हड्डी के रँगवाला बादल लेटा है ।''

27.9.6. साधारण विषयों का निरूपण

प्रयोगवादी कवियों ने समस्त संसार के साधारण-से-साधारण विषयों को अपने काव्य का उपादान बनाया है । उन्होंने संसार की किसी वस्तु की अवहेलना नहीं की । यही कारण है कि कविता में पहली बार कंकरीट के पोर्च, चाय की प्याली, सायरन, रेडियम की घड़ी, चूड़ी का टुकड़ा, बाथरूम, क्रोशिए, गरम पकौड़ी, बाँस की टूटी हुई टट्टी, फटी ओढ़नी की चिंदियाँ, टुच्चे दईमारे पेड़ आदि का चित्रण हुआ ।

27.9.7. छंद-योजना

प्रयोगवादी कलाकारों ने छंद के बंधन को स्वीकार नहीं किया है, फिर भी मुक्तक परंपरा में वे विश्वास रखते हैं । लोकगीतों की ध्वनियों पर भी गीतों की रचना

की गई है । गद्य की-सी नीरसता भी इन कविताओं में देखी जा सकती है, क्योंकि ये लय, गति और तुक से विहीन हैं ।

27.9.8. भाषा का प्रयोग

प्रयोगवादी कवियों ने भाषा के नवीन और सुंदर प्रयोग किए हैं । अतः इनकी कविताओं में व्याकरण की अवहेलना खूब मिलती है । उदाहरणार्थ -

''शक्ति दो बल दो हे पिता !
जब दुःख के भार से मन थकने आय
पैरों में कुली की-सी लपकती चाल छटपटाय ।''

भाषा में नवीन प्रयोग के कारण कविता में भूगाल, विज्ञान, गणित, दर्शन, मनोविश्लेषणशास्त्र एवं बाजारू बोली के शब्दों के प्रयोग अधिक मिलते हैं ।

27.10. प्रयोगवाद की आलोचना

नूतनता का, सब कुछ नये ढंग से, नई भाषा और नये रूप में प्रस्तुत करने का मोह ही इस काव्य की दुरूहता, अस्पष्टता और समाज-निरपेक्षता का प्रधान कारण रहा है । इस प्रयत्न में भाव और विचार क्रमबद्ध रूप में आगे नहीं बढ़ पाते, संवेदना उलझ कर रह जाती है । प्रयोगवाद के इस रूप को देखकर ही हिंदी के अनेक सजग, प्रबुद्ध आलोचकों ने उसकी कटु आलोचना की है । पं. नन्ददलारे वाजपेयी का कथन है कि - ''किसी भी अवस्था में यह प्रयोगों का बाहुल्य वास्तविक साहित्य-सृजन का स्थान नहीं ले सकता । प्रयोग में और काव्यात्मक निर्णय या सृजन में जो मौलिक अंतर है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । विशेषकर काव्य का क्षेत्र प्रयोगों की दुनिया से बहुत दूर है । कवि सबसे पहले अपनी अनुभूतियों के प्रति उत्तरदायी है । वह उनके साथ खिलवाड़ नहीं कर सकता । उसका दूसरा उत्तरदायित्व काव्य परम्परा और काव्यात्मक अभिव्यक्ति के प्रति है । वह किसी भी अवस्था में ऐसे प्रयोगों का पल्ला नहीं पकड़ सकता, जिसका उस काव्य के भावगत

और भाषागत संस्कारों से तथा उन दोनों के स्वाभाविक विकास-क्रम से सहज संबंध नहीं है । .....प्रयोगवादी साहित्यिक से साधारणतः उस व्यक्ति का बोध होता है जिसकी रचना में कोई तात्विक अनुभूति , कोई स्वाभाविक विकास-क्रम या कोई सुनिश्चित व्यक्तित्व न हो ।'' डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रयोगवादियों के नवीनता के मोह को विकृत बताया है । डॉ.नगेन्द्र ने प्रयोगवाद की अतिशय बौद्धिकता की आलोचना करते हुए इस काव्य-धारा की दुरूहता के मुख्य कारण इस प्रकार बताया है -

1. भावतत्व और काव्यानुभूति के बीच रागात्मक के बजाय बुद्धिगत संबंध ।
2. साधारणीकरण का त्याग ।
3. उपचेतन मन के अनुभव-खंडों के यथावत् चित्रण का आग्रह ।
4. काव्य के उपकरणों और भाषा का एकांत वैयक्ति और अनर्गल प्रयोग ।
5. नूतनता का सर्वग्राही मोह जो सदा परिचित को छोड़ अपरिचित की खोज में रहता है ।

पं.नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रयोगवादी काव्य के संबंध में निम्नांकित निष्कर्ष दिये हैं -

1. प्रयोगवादी रचनाएँ पूरी तरह काव्य की चौहद्दी में नहीं आतीं । ये अतिरिक्त बुद्धिवाद से ग्रस्त हैं ।
2. ये रचनाएँ वैचित्र्य प्रिय हैं । इनमें वृत्ति का सहज अभिनिवेश नहीं है ।
3. ये अनुभूति के प्रति ईमानदार नहीं हैं और सामाजिक उत्तरदायित्व को भी पूरा नहीं करतीं ।

27.11. प्रयोगवाद का एक नया रूप-प्रपद्यवाद

अज्ञेय ने परम्परा-विरोध और नए प्रयोगों पर अधिक बल दिया था । प्रयोगवाद के आरंभ के कुछ समय के उपरांत बिहार के तीन साहित्यकारों-नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश ने मिलकर प्रयोगवाद के रूप को और अधिक उग्र तथा संकीर्ण बनाते हुए एक नए साहित्यिक आंदोलन को जन्म दिया जो इन तीनों कवियों के प्रथम नामाक्षरों के आधार पर ''नकेनवाद'' कहलाया । वस्तुतः

यह अतियथार्थवाद का ही एक रूप था, जो ''प्रपद्यवाद'' भी कहलाता है । इसके प्रवर्तकों के अनुसार इस नये वाद में -भाव और व्यंजना का स्थापत्य, सभी शास्त्रों द्वारा निर्धारित नियमों की अस्वीकृति, पूर्ववर्ती परम्पाओं को निष्प्राण मान नकारना, प्रयोग को साधन न मान साध्य के रूप में ग्रहण करना, तथा अनुकरण को पूर्णतः वर्जित मानना, प्रधान विशेषताएँ हैं । वस्तुतः यह नया वाद योरोपीय अतियथार्थवाद का ही भारतीय संस्करण था । परंतु हिन्दी में यह अपना प्रभाव जमाने में असमर्थ रहा ।

27.12. प्रयोगवाद की उपलब्धियाँ

मूलतः प्रयोगवाद नवीनता के मोह के उन्माद से ग्रस्त साहित्य का एक ऐसा रूप है जिसमें समष्टि के स्थान पर व्यक्ति को ही प्राधान्य मिला है । यह उल्लेखनीय है कि प्रयोगवाद का स्वस्थ रूप उन्हीं कवियों में मिलता है जो प्रथम ''तार सप्तक'' में संग्रहीत थे । स्वस्थ प्रयोग करनेवाले प्रयोगवादियों में -गजानन मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, भरत भूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर आदि महत्वपूर्ण हैं । इन कवियों ने जन-भाषा में सामान्य-जन के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है । उदाहरणार्थ गिरिजा कुमार माथुर द्वारा रचित ''शाम की धूप'' की कुछ पंक्तियाँ निम्नांकित हैं -

''क्योंकि अब बंद हो गए दफ्तर,
घन्टियाँ बज रही हैं रिक्शों की
बीसियों साइकिलों की पाँतें
कैरियर, टोकरी या हैंडिल में
कुछ के खाली कटोरदान बँधे,
कुछ में हैं फाइलें हर दिन भूखी
जो न कभी खत्म हुई आफिस में ।''

इसी प्रकार मुक्तिबोध की 'नाश देवता'', ''हे महान्'' आदि कविताएँ अत्यंत सशक्त, मनोरम और कलापूर्ण हैं । इनमें संगीत, क्रम, लय आदि का पूरा ध्यान रखा गया है । प्रयोगवादी काव्य की उपलब्धि यह है कि इसमें सम-सामयिक जीवन-चेतना के नये स्वर मुखरित हुए हैं, भले ही उनकी अभिव्यक्ति वैयक्तिकता-प्रधान रही हो । कुछ कवियों ने परम्परागत उपमानों को त्याग, सामयिक जीवन में बहुलता से प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं को उपमानों के रूप में प्रयुक्त किया है, जैसे - **''कैमरे के लैन्स सी हैं आँखें बुझी हुई'', ''टाइप राइटर की 'की' की तरह ।''** ये उपमान नवीन होते हुए भी सामयिक जीवन की नवीनता और नवीन युग-बोध को अभिव्यक्त करने में समर्थ हैं । प्रयोगवादी काव्य में ऐसे नवीन और सार्थक उपमानों की बहुलता है । व्यक्तिवाद प्रयोगवादियों का मूल स्वर रहा है, जिसका कारण उनका अहं है । यह अहं परम्परा और समाज के विरूद्ध विद्रोह को उकसाता है । इसी कारण ये लोग परम्परा,रूढ़ि आदि को नकारते हुए एकाकी ही विद्रोह-पथ पर आगे बढ़ने की उद्घोषणा करते हैं - **''बिना सीढ़ी के बढ़ेंगे, तीर के जैसे बढ़ेंगे ।''** साथ ही, ये नियति को भी चुनौती देते हैं - **''मैं खड़ा तुमको यहाँ ललकारता हूँ ।''** इसे इन कवियों की आत्म-शक्ति-जनित विद्रोह की ही अभिव्यक्ति मानना चाहिए । यदि प्रयोगवाद इस व्यक्तिगत विद्रोह को प्रगतिवाद के समान समूहगत बना सकता तो प्रयोगवादी साहित्य अपनी नवीनता के साथ अभूतपूर्व साहित्य बन जाता । इस साहित्य में अनास्थावादी विचारधारा के प्राधान्य के कारण वैयक्तिक कुंठाओं की अभिव्यक्ति को ही अधिक प्रश्रय मिला है । कवि के मानस में निरंतर उठते रहनेवाले संशय उसकी संपूर्ण आस्था को छिन्न-भिन्न कर उसे अस्तित्ववादी बना देते हैं । वह प्रतिक्षण अपने अस्तित्व के नष्ट होने के भय से आक्रांत रहता है । धर्मवीर भारती लिखते हैं -

''अपनी कुठाओं की
दीवारों में बन्दी
मैं घुटता हूँ ।''

जीवन के प्रति अनास्था ने इस काव्य में पराजय, निराशा और विश्वास के स्वर भर दिए हैं । प्रयोगवादी कलाकार समाज और परंपरा से कटकर अपने में ही सीमित होकर रह गया है । परंतु कुछ कवियों में आस्था और भावी विकास के स्वर गूँजते सुनाई पड़ते हैं । अज्ञेय ने आस्था की शक्ति को स्वीकार करते हुए लिखा है - ''आस्था न काँपे, मानव फिर मिट्टी का भी देवता हो जाता है ।'' संसार के अनेक श्रेष्ठ कलाकारों ने वेदना को जीवन-प्रदायिनी शक्ति माना है । यह वेदना जीवन को विषपायी बना उसे शुद्ध, शुभ्र रूप प्रदान करती है । कवि भारत भूषण अग्रवाल ने भी वेदना के इसी रूप को स्वीकार करते हुए लिखा है -

''पर न हिम्मत हार ;
प्रज्ज्वलित है प्राण में अब भी व्यथा का दीप
ढाल उसमें शक्ति शक्ति अपनी, लौ उठा ।''

यह वेदना मानव-कल्याण की जननी है । इसी मानव-कल्याण की भावना से भरकर रघुवीर सहाय सूर्य से यह वरदान देने की प्रार्थना करते हैं -

''जिससे भर जाए दूध-सा पृथ्वी का आँचल ;
जिससे हर दिन उसके पुत्रों के लिए मंगल हों ।''

ऐसे स्वस्थ स्वर आस्था को दृढ़ बनाते हैं । किंतु संपूर्ण प्रयोगवादी काव्य में ऐसे आस्था से भरे स्वर विरल और अत्यंत मंद रहे हैं । शिल्प के क्षेत्र में भी प्रयोगवादियों ने स्पृहणीय नवीनताओं का समावेश किया है । कुछ कवियों ने भाषा, लय, शब्द, बिम्ब, उपमान, छन्द आदि के क्षेत्र में अनेक नए स्वस्थ प्रयोग किये हैं । इस काव्य का बिम्ब-विधान कहीं-कहीं छायावादी-काव्य के बिम्ब-विधान से भी अधिक सशक्त, स्पष्ट और उज्ज्वल है । प्रयोगवाद ने हिन्दी-काव्य को एक नई सशक्त भाषा प्रदान की है, भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति बढ़ाई है ।

27.13. समाहार

प्रगतिवादी साहित्य सिद्धांत बताता है कि साहित्य का उद्देश्य क्या होना चाहिए । वह जनता की भावनाओं, आकांक्षाओं और सपनों को व्यक्त करने पर बल देता है । वह वस्तु पर जोर देकर भी रूप की उपेक्षा नहीं करता । प्रगतिवाद मार्क्सवाद का पर्याय नहीं है, न ही समाजवाद और साम्यवाद का पर्याय है । मार्क्सवादी दर्शन का आधार द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद है । इसके अनुसार सामाजिक विकास का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है । समाज के दो वर्ग शोषक और शोषित वर्ग हैं । वर्ग संघर्ष के कारण सामाजिक संरचनाओं में बदलाव आता है । मार्क्सवाद सिर्फ सामाजिक रूपांतरण का दर्शन ही नहीं है, उसने साहित्य और कला के चिंतन को भी गहरे रूप से प्रभावित किया है । प्रगतिवादी काव्य-धारा इसका प्रतिफलन है ।

प्रयोगवादी कविता के कवियों ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से एक अलग प्रकार की मनोभूमि को निर्मित किया । ''तारसप्तक'' प्रयोगवादी काव्य की मनोभूमि को प्रतिनिधित्व करनेवाला काव्य-संग्रह है । किसी भी साहित्यिक धारा की तरह प्रयोगवाद में अंतर्विरोध की स्थिति उत्पन्न हुई थी । नकेनवादी इसी अंतर्विरोध का प्रमाण था । प्रयोगवाद के चमत्कारी रूपवाद से कविता को मुक्त करने का प्रयास होने लगा । अज्ञेय कविता को केवल प्रयोग के रूप में प्रस्तावित करना चाहते थे, लेकिन आलोचकों ने उसे प्रयोगवाद बनाया । बिंब और प्रतीक प्रयोगवादी कविता की शैली का अंग है । अज्ञेय ने नए प्रतीकों को ''यौन परिकल्पनाओं'', ''जटिल यथार्थ की स्थितियों'', ''अनकहे को संकेतित करने की '' आधुनिक शक्ति का नाम

दिया है । "प्रतीक जटिल मनःस्थिति को बोधगम्य बनाते हैं ।" प्रयोगवाद के प्रवर्तन का पूरा श्रेय अज्ञेय को ही जाता है । प्रयोगवाद, सामान्य और विशिष्ट दोनों अर्थों में अपने से पहले की कविता से विद्रोह करती कविता है ।

27.14. बोध प्रश्न

1. प्रगतिवाद के उदय के कारणों का विवेचन कीजिए ।
2. प्रगतिवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए ।
3. आधुनिक काव्य परंपरा में प्रगतिवाद के योगदान पर प्रकाश डालिए ।
4. प्रयोगवाद पर एक टिप्पणी लिखिए ।
5. प्रयोगवाद की उपलब्धियों पर लेख लिखिए ।
6. प्रयोगवाद के विकास-क्रम को समझाइए ।

NOTES

NOTES

NOTES

NOTES

NOTES

इकाई अट्ठाईस : आधुनिक काल (अन्य काव्य प्रवृत्तियाँ)

इकाई की रूपरेखा

28.0. उद्देश्य

28.1. प्रस्तावना

28.2. नई कविता

28.3. नई कविता की प्रवृत्तियाँ

- 28.3.1. सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति
- 28.3.2. यौन कुंठाओं और यौन वर्जनाओं का चित्रण
- 28.3.3. व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति
- 28.3.4. प्रेम का चित्रण
- 28.3.5. परित्यक्त और वर्जित विषयों का अंकन
- 28.3.6. शास्त्रीय मान्यताओं के प्रति अनास्था
- 28.3.7. शिल्पगत नवीनता

28.4. नवगीत या नया गीत

28.5. साठोत्तरी हिंदी कविता

28.6. निषेधमूलक कविता-अकविता

28.7. अकविता की प्रवृत्तियाँ

- 28.7.1. परंपरागत तत्वों एवं धारणाओं की अस्वीकृति
- 28.7.2. उच्छृंखल भोगवाद
- 28.7.3. मानवता के महाविनाश की कामना

28.7.4. जनतंत्र का विरोध

28.7.5. कविता के प्रति गंभीर दृष्टिकोण का अभाव

28.8. संघर्षमूलक कविता - जनवादी कविता

28.9. आस्थामूलक कविता - सहज कविता

28.10. समकालीन कविता

28.11. हास्य-व्यंग्य-प्रधान कविता

28.12. प्रमुख कवि

28.12.1. अज्ञेय

28.12.2. नागार्जुन

28.12.3. गजानन माधव मुक्तिबोध

28.12.4. शमशेर बहादुर सिंह

28.12.5. त्रिलोचन शास्त्री

28.12.6. भवानीप्रसाद मिश्र

28.12.7. धर्मवीर भारती

28.12.8. गिरिजाकुमार माथुर

28.12.9. भारतभूषण अग्रवाल

28.12.10. दुष्यंत कुमार

28.12.11. रघुवीर सहाय

28.12.12. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

28.12.13. धूमिल

28.13. समाहार

28.14. बोध प्रश्न

M.A. Hindi Course 4 Block 4 F. No.4 Front

28.0. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के पश्चात् के काव्यांदोलनों की चर्चा की जा रही है , जिसके अध्ययन के बाद आप -

1. नई कविता से परिचित होंगे ;
2. नई कविता की प्रवृत्तियों से अवगत होंगे ;
3. साठोत्तरी हिंदी कविता की संपूर्ण जानकारी प्राप्त करेंगे ;
4. अकविता से परिचित होंगे ;
5. अकविता की प्रवृत्तियों का परिचय प्राप्त करेंगे ;
6. जनवादी कविता से परिचित होंगे ;
7. समकालीन कविता से परिचित होंगे ;
8. हास्य-व्यंग्य प्रधान कविता से परिचित होंगे ;
9. प्रमुख कवियों का परिचय प्राप्त करेंगे ।

28.1. प्रस्तावना

इस इकाई के अंतर्गत प्रपद्यवाद और प्रयोगवाद के पश्चात् की काव्यधाराओं में नई कविता, अकविता, जनवादी कविता, समकालीन कविता, हास्य-व्यंग्य प्रधान कविता, आदि का विशद परिचय दिया जा रहा है । साथ ही, आधुनिक काल के प्रमुख कवियों की चर्चा करते हुए उनकी साहित्यिक महत्ता को प्रस्तुत किया जा रहा है ।

28.2. नई कविता

प्रपद्यवाद और प्रयोगवाद के पश्चात् काव्यधाराओं में नई कविता का प्रवर्तन एक महत्वपूर्ण काव्यधारा के रूप में हुआ । आलोचकों का एक वर्ग इसे प्रयोगवादी काव्यधारा के अंतर्गत स्वीकार करता है और दूसरा वर्ग प्रयोगवाद से भिन्न काव्यधारा के रूप में । प्रयोगवादी कवियों से अलग एक कविवर्ग ने स्वतंत्र परिवेश में जिन कविताओं का सर्जन किया, वे ही 'नई कविता' नाम से अभिहित हुईं ।

'नई कविता' नामकरण के पीछे 'छायावाद' अथवा 'प्रयोगवाद' आदि नामों की भाँति परिहास की भावना अथवा निश्चित योजना नहीं थी, यद्यपि कविता के साथ प्रयुक्त 'नई' विशेषण ने बहुतों का चौंकाया भी । इसका प्रतिवाद भी हुआ और जिस प्रकार प्रयोगवाद के सम्बन्ध में यह कहा गया था कि प्रयोग हर काल के कवियों ने किए हैं, ठीक वैसे ही 'नई' विशेषण को लेकर भी यह कहा गया कि प्रत्येक युग की कविता अपने युग में नई होती है, वह नाम के अभाव में नहीं मरती । अस्तु, छायावाद तथा प्रयोगवाद की भाँति, बहुत विरोध के बावजूद, नई कविता नाम चल पड़ा और आज वही सर्वमान्य है । जहाँ तक नई कविता के नामकरण का प्रश्न है - नई कविता नामोल्लेख 1953 ई. में 'नए पत्ते' में प्रकाशित रेडियो - परिसंवाद में पहले-पहल अज्ञेय द्वारा किया गया था । इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि अज्ञेय 'नई कविता' के प्रवर्तक हैं अथवा माना जाना चाहिए ।

जिस प्रकार प्रयोगवाद के स्वरूप, स्पष्टीकरण और विकास की दिशा में 'प्रतीक', 'पाटल', 'दृष्टिकोण' आदि पत्रिकाओं का योगदान रहा है, वैसे ही कुछ महत्वपूर्ण पत्रिकाओं ने 'नई कविता' के स्वरूप, स्पष्टीकरण और विकास की दिशा में भी योगदान दिया । इस दिशा में 1950 से 1952 ई. तक दिल्ली से प्रकाशित मासिक 'प्रतीक' तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी द्वारा संपादित, पहले स्वतंत्र रूप में और बाद में लक्ष्मीकांत वर्मा के सहयोग से संपादित' 'नए पत्ते' (1953 ई.) ने प्रारंभिक भूमिका निबाही । इसके बाद शुरू में डॉ. जगदीश गुप्त तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी द्वारा और बाद में विजयनारायण साही के सहयोग से संपादित 'नई कविता : 1954' ने महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

इस पत्रिका ने नए कवियों की रचनाएँ प्रस्तुत की और नई कविता की प्रवृत्तियों के स्पष्टीकरण के लिए सैद्धांतिक पीठिका भी प्रस्तुत की । नई कविता के

ही प्रकाशक 'साहित्य-सहयोग' के तत्वावधान में धर्मवीर भारती और लक्ष्मीकांत वर्मा ने 'निकष' का संपादन करके नई कविता को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया । अन्य पत्रिकाओं में लखनऊ से प्रकाशित होनेवाली 'युगचेतना' हैदराबाद से प्रकाशित होनेवाली 'कल्पना' और कलकत्ता से प्रकाशित होनेवाली 'ज्ञानोदय' के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं ।

'नई कविता' अपने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में पचासोत्तरी आधुनिक कविता है । इस आधुनिकता में कई दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा सामाजिक उपलब्धियाँ तथा उनके सभी अच्छे और बुरे प्रभाव सन्निहित हैं ।

28.3. नई कविता की प्रवृत्तियाँ

28.3.1. सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति

पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति असंतोष होने के कारणं नए कवियों ने सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया है -

''परिस्थितियों का पिता है वर्ग और समाज पूँजी का,
और, मेरे विकल मन की सभी सीमाएँ
वहीं से निःसृत हुई हैं ।''

28.3.2. यौन कुंठाओं और यौन वर्जनाओं का चित्रण

नई कविता में अपने युग के जीवन की प्रतिक्रिया के रूप में पीड़ा, निराशा, विषाद, अनास्था, घुटन, कुंठा आदि का चित्रण अधिक मात्रा में हुआ है । इनमें भी यौन कुंठाओं एवं वर्जनाओं को सर्वाधिक अभिव्यक्ति मिली है -

''हमलोगों का एकमात्र श्रम है - सुरति श्रम
इस अन्त्यज का एकमात्र सुख है - मैथुन सुख''

28.3.3. व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति

नई कविता में व्यक्तिवादी अनुभूति पर ही अधिकांश कवियों की उलझी हुई संवेदनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं । इसीलिए इन कविताओं में आत्मरति, आत्मोन्मीलन, आत्मसंघर्ष, अपनी ही निराशा, मनोभग्नता एवं सूक्ष्म अंतरानुभूति, अपने निजी व्यक्तित्व का विघटन आदि को अधिक स्थान मिला है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इन कविताओं में उस व्यक्ति-चेतना और वर्ग-चेतना के संघर्ष को अधिक चित्रित किया गया है, जो सामाजिक रूढ़ियों में स्थिति-परिवर्तन के साथ-साथ कोई परिवर्तन या विकास न देखने के कारण आज के नए कवि के अंतःकरण को आक्रोश, खीझ, घुटन, कुंठा, यौन वर्जनाओं आदि से भर देता है । ये ही उसमें 'अहं' एवं 'दंभ' के भी उत्पादक हैं -

''जबकि अंदर खोखलापन कीट-सा
है सतत घर कर रहा आराम से
क्यों न जीवन का वृहद् अश्वत्थ यह
डर चले तूफान के ही नाम से ।''

28.3.4. प्रेम का चित्रण

नई कविता में प्रेम का भी चित्रण हुआ है, किंतु संयोग की अपेक्षा वियोग-वेदना के अधिक गीत गाए गए हैं । इसमें प्रेम को एक ऐसा थका-माँदा पक्षी माना गया है, जो साँझ घिरती देखकर एक ओर तो आशंका से घिरा हुआ है, किंतु विश्वास की निष्कंप अवस्था में कुछ नीचे ही है और उसमें वासना एवं विवेक की धूप-छाँह स्पष्ट दिखाई देती है । नए कवियों ने प्रणय के मांसल उपभोग का उन्मुक्त एवं निर्व्याज चित्रण किया है । कहीं-कहीं यौन चित्रण अत्यधिक नग्नता के कारण भदेस की सीमा तक का स्पर्श करता है । उदाहरण के लिए, श्रीमती शांता सिन्हा की कुछ पंक्तियाँ पेश हैं -

''आज मुख्य मेहमान तुम
रात के 'फ्लोर शो' में
एक बार, बस एक बार
अपने तन की छाप छोड़ जा,
मुझ पर ।''

28.3.5. परित्यक्त और वर्जित विषयों का अंकन

नई कविता में प्रकृति, नारी, काम-वासना आदि के चित्रण में भी कवियों की 'अहं' और 'दंभ' की प्रवृत्ति का प्राधान्य ही दिखाई देता है । वे प्रायः उन परित्यक्त एवं वर्जित विषयों के प्रति अधिक प्रवृत्त हुए हैं, जिनपर अभी तक हिंदी के कवि कुछ लिखना अनुचित एवं अनुपयोगी समझते थे ।

अज्ञेय ने अपनी 'शिशिर की राका निशा' कविता में अन्य सभी का चित्रण करते हुए गदहा और वन्यबिलार का भी वर्णन किया है -

''निकटतर धँसती हुई छत, आड़ में निर्वेद
मूत्र-सिंचित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टाँगों पर खड़ा नतग्रीव
धैर्य-धन गदहा,
निकटतम -
रीढ़ वंकित किए, निश्छल किंतु लोलुप खड़ा वन्यबिनार
पीछे गोयठों के गंधमय अंबार ।''

28.3.6. शास्त्रीय मान्यताओं के प्रति अनास्था

नई कविता में किसी भी शास्त्रीय मान्यता के प्रति कोई आस्था नहीं दिखाई देती । इसलिए सभी नए कवि व्यास और समास दोनों प्रकार की शैलियाँ अपनाते हुए भाषा के नूतन-नूतन प्रयोगों की ओर अग्रसर हुए हैं । पुरानी परंपरा को निष्क्रिय एवं पुरानी उपलब्धियों को निरर्थक मानकर अभिव्यक्तिगत नूतन चमत्कार तथा शब्दों के विच्छित्तिपूर्ण नूतन प्रयोगों को सर्वाधिक महत्व दिया गया है । अभिव्यक्ति के लिए नूतन प्रतीकों एवं नूतन उपमानों को अपनाया गया है -

''कुहरा उठा,
साये में लगता पथ दुहरा उठा,
हवा को लगा गीतों के ताले
सहमी पाँखों ने सुर तोड़ दिया ।
टूटती बलाका की पाँतों में
मैंने ही अंतिम क्षण जोड़ दिया ।''

28.3.7. शिल्पगत नवीनता

शिल्पगत तत्वों में भाषा, बिंब, प्रतीक, छंद, लय, तुक, अलंकार आदि को गिना जाता है । प्रत्येक कवि को अपने अनुभूत सत्य की अभिव्यंजना में सर्वप्रथम भाषा की आवश्यकता महसूस होती है । प्रत्येक संवेदनशील रचनाकार भाषा से संघर्ष और असंतोष का अनुभव गहरे स्तरों पर करता है । यह संघर्ष और असंतोष वस्तुतः उसका अपने-आप से है ; क्योंकि भाषा उसके संपृक्त व्यक्तित्व का अनिवार्य और अविभाज्य अंग है ।

(क) भाषा

नए कवियों में अप्रचलित शब्दों के प्रति मोह बना रहता है । उदाहरण के लिए, उन्होंने विजिगीषा, प्रदाहसम, रणोद्यत, स्थाणु, उड्डीयमान, प्रमाथी, कुज्झटिका, सर्वद्रावी, ढोंडिया, लण्ठूरी, ईषत्कंपित, परभृता, निरादर्श, तव और मम शब्दों का प्रयोग किया है । ऐसा भी नहीं है कि ये शब्द प्रसंग अथवा पारंपरिक सन्दर्भ की अनिवार्यता में प्रयुक्त हुए हैं । ऐसे शब्दों के प्रयोग से अर्थ-निष्पत्ति में बाधा ही पहुँचती है । निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है -

''चिर अनातुर, चिर अचंचल, महद्गति बेरोक
काल के युगचरण की शाश्वत-प्रवाही चाप सहसा
रणरणित कर गई
दुहरी पृथक्ता द्वारा धनावृत ऐक्य को ।''

(ख) बिम्ब

कवि द्वारा सन्दर्भगत अनुभूतियों के अंकन में जब सन्दर्भों का मूर्तीकरण किया जाता है, उसकी भाषा बिम्बात्मक रूप धारण करती है । संदर्भों के बिम्ब उभारने के लिए सादृश्य सन्दर्भों की योजना की अपेक्षा रहती है । बिम्ब की सार्थकता भाव के सही प्रकाशन, वस्तु के प्रभावपूर्ण उद्‌घाटन तथा उसके साथ अपना पूर्ण सामंजस्य स्थापित कर लेने में है । नई कविता में मूल्यवान् अभिव्यक्ति की अनुरूपता में नए शब्द-प्रयोगों और आधुनिक संदर्भों से सम्बद्ध बिम्बांकन हुए हैं । अनेक कवियों ने मुक्त चेतना-प्रवाह के प्रभाव में आकर घिनौने, अस्पष्ट और मूल्यहीन बिम्ब की योजना भी की है । उदाहरण के लिए अज्ञेय के यौन-बिम्ब को देखा जा सकता है -

''और वह दृढ़ पैर मेरा है,
गुरू स्थिर स्थाणु-सा जड़ा हुआ
तेरी प्राण-पीठिका पै लिंग-सा खड़ा हुआ ।''

अज्ञेय ने विशिष्ट रूप-व्यापारों को एक खास तीखापन देने के लिए चुने हुए विशेषणों के प्रयोगों द्वारा नए प्रकार का बिम्बांकन किया है । जैसे-थिर पत्ती, झोंप अँधियाला, मौन नीड़ आदि । शमशेरबहादुर सिंह, गिरिजाकुमार माथुर तथा नरेशकुमार ने कम शब्दों में प्रभावोत्पादक बिम्बांकन किए हैं ।

धर्मवीर भारती का बिम्ब-विधान अपेक्षाकृत अधिक पौराणिक और सशक्त बन पड़ा है । मुक्तिबोध को फैण्टेसी का कवि माना जाता है और उनकी फैण्टेसी बिम्बों से ओतप्रोत है । उदाहरण के लिए -

''बाबड़ी की उन घनी गहराइयों में शून्य
ब्रह्मराक्षस एक बैठा है ।
x x x x x

टेलीफोन-खंभों पर थमे हुए तारों ने
सट्टे के ट्रंक-काल सुरों में
थर्राना और झनझनाना शुरू किया ।''

नए कवियों में केदारनाथ सिंह का नाम भी बिंब-विधान की दृष्टि से उल्लेखनीय है । अनागत का मुसाफिरी रूप द्रष्टव्य है -

''इस अनागत को करें क्या ?
जो कि अक्सर बिना सोचे, बिना जाने
सड़क पर चलते अचानक दीख जाता है ।''

'नई कविता' में प्रयुक्त बिम्ब की यह विशेषता रही है कि ये नए बिम्ब समसामयिक परिवेश से ही ग्रहण किए गए हैं । जैसे - **'प्रखर निर्मल प्यार छिछली नदी-सा'**, **'ऊपर से फ्लैट प्रोनोट-सा लगता है'**, **'झील किसी कामिनी के चू पड़े नयन-सी'**, **'नावें जिसमें सपने-सी बहती हैं'** आदि ।

(ग) प्रतीक

नए बिम्बों के समान ही नए कवियों ने नए-नए प्रतीक अपनाए हैं । प्रतीक अर्थ की सार्थक व्यंजना में सहायक होते हैं, इसीलिए इनका प्रयोग किया जाता है । काल-प्रवाह में पुराने प्रतीक जब अपनी सार्थकता खो बैठते हैं, तब नवयुग के नए कवि नए-नए प्रतीक गढ़ने लगते हैं । अप्रस्तुत को सर्वसंवेद्य बनाने में ही प्रतीकों की सार्थकता मानी जाती है । यदि प्रयुक्त प्रतीक उस अप्रस्तुत के रूप को स्पष्ट करने में असमर्थ रहता है, तो उसकी कोई उपयोगिता नहीं रह जाती । नए कवियों ने इस सत्य को पहचान कर अनर्गल-असंवेद्य प्रतीकों का मोह त्याग ऐसे प्रतीकों का प्रयोग करना प्रारंभ किया, जो सहज संवेद्य बनने में समर्थ थे । मुक्तक कविताओं में तो नए प्रतीकों का प्रयोग हुआ है, कुछ लंबी कविताएँ और प्रबंध काव्य पूरे-के-पूरे प्रतीक रूप में लिखे गए । जैसे-धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' तथा 'कनुप्रिया', अज्ञेय

का 'नदी के द्वीप' तथा 'यह दीप अकेला' आदि । गिरिजाकुमार माथुर की एक रचना के एक विशिष्ट भावोदय की शक्ति और स्थिति का प्रतीक द्रष्टव्य है -

''उन्हीं रेडियम के अंकों की लघु छाया पर
दो छाँहों का वह चुपचाप मिलन था ।''

अज्ञेय के बहुत-से प्रतीक प्रायः जुगुप्सा-भाव को ही जगाते हैं । जैसे -

''यह कली झुटपुट अँधेरे में
पली थी देहात की गली में
भोली-भली
नगर के राजपथ दिपते
प्रकाश में गई छली ।''

(घ) लय, तुक और छंद

लय, तुक और छंद कुल मिलाकर एक ही वस्तु हैं । क्योंकि एक की सत्ता दूसरे पर निर्भर करती है । नए कवियों ने छन्द के बंधन को अस्वीकार करते हुए शब्द, पंक्ति, लय आदि को स्वच्छंद रूप से आगे बढ़ने दिया । परिणामस्वरूप, अनेक कविताएँ गद्य-सी बन गईं । संगीत और उसकी लय कविता में एक मनोरम झंकार और प्रभविष्णुता उत्पन्न कर देती है । अधिकांश नई कविताओं में इनकी पूर्ण उपेक्षा की गई है । अनेक कवियों ने उर्दू की गजल, शेर, रूबाई तथा अँग्रेजी के सॉनेट आदि छन्द को अपनाकर छन्द के नए-नए प्रयोग अवश्य किए हैं । किंतु,इस प्रवृत्ति को भी विशेष प्रोत्साहन नहीं मिला, यद्यपि आजकल भी एसे प्रयोग स्वच्छन्दता के साथ किए जाते हैं ।

(ङ) अलंकार

नई कविता में ऽ,, ∩ः सादृश्यमूलक अलंकारों के स्थान पर बृहत्तर अर्थों को प्रतिध्वनित करनेवाले स्वतःस्फूर्त प्रतीकों की भरमार दिखाई देती है, जिनमें प्रत्यग्र प्रज्ञा के साथ उनकी नित्य-नूतन प्रयोग की प्रवृत्ति अभिव्यक्त हुई है । नए कवियों में

नए-नए शब्दचित्रों को अंकित करते हुए कथ्य को सजा-सँवारकर प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति अधिक प्रचलित है । इसलिए, नए कवि दिन को हिरण-सा चौकंड़ी भरता हुआ देखते हैं, शाम को सोनचिरैया को नीड़ में जाकर सोता देखते हैं, नदी को एक नौजवान ढीठ लड़की के रूप में चित्रित करते हैं, जो पहाड़ से मैदान में आई है और जिसने बला की सुंदरता पाई है । साथ ही, **'प्रातः कच्चे घर डूब गए कंचन के पानी में'** कहकर प्रातःकालीन सुनहली आभा का चित्र देना अधिक उपयुक्त समझते हैं ।

नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं-अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचंद्र, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा, भवानीप्रसाद मिश्र, शकुंत माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेरबहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, कीर्ति चौधरी, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, विजयदेवनारायण साही, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, प्रयागनारायण त्रिपाठी, मदन वात्स्यायन, राजेन्द्रप्रसाद सिंह, जुगमिंदर तायल, नंद चतुर्वेदी, कीर्तिनाथ मिश्र, विष्णुकिशोर बेचन, आनंदनारायण शर्मा, प्रभाकर मिश्र, वचनदेव कुमार, जयगोविंद सहाय, मधुकर सिंह, सत्यदेव शांतिप्रिय, गोपालकृष्ण कौल, बजरंग सिंह, सिद्धनाथ कुमार, दुष्यंत कुमार, परमानंद श्रीवास्तव, रमानाथ अवस्थी, वीरेंद्र मिश्र, रामावतार त्यागी, जगतप्रकाश चतुर्वेदी इत्यादि ।

28.4. नवगीत या नया गीत

'नई कविता', 'नई कहानी' और 'नई आलोचना' के समान ही 'नवगीत' का प्रादुर्भाव हुआ है । 1948-50 के मध्य नवगीत-लेखन की परंपरा प्रकाश में आई । आधुनिकता और वैज्ञानिक युगबोध सौंदर्य के दावेदार तथाकथित नवगीतकारों ने

अपने गीतों को 'नवगीत', 'नयागीत', 'अगीत', 'प्रगीत', 'लोकगीत', 'कबीरगीत' आदि नामों से अभिहित किया । 1959 ई. में 'तीसरा सतक' के प्रकाशन के साथ ही नवगीत-विधा की पूर्ण स्थापना हुई ।

इस संदर्भ में द्रष्टव्य है कि प्रयोगवादी 'नई कविता' नाम के अनुकरण पर हिंदी के कतिपय नवीन गीतकारों ने अपने गीतों को पूर्ववर्ती गीतिकाव्य से भिन्न और विशिष्ट सिद्ध करने के लिए उन्हें 'नवगीत' की संज्ञा प्रदान की थी । राजेंद्रप्रसाद सिंह, डॉ.शंभुनाथ सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, वीरेंद्र मिश्र, त्रिलोचन शास्त्री, रवींद्र भ्रमर आदि ने 'नवगीत' की चर्चा आरंभ की और परिणामस्वरूप 'कविता - 1964' नामक संकलन में 'नवगीत' का नया संकलन सामने आया । इनकी भाषा में लोकभाषा की सहज भंगिमा और लोकगीतों की संगीतात्मकता को अपनाया गया । 'नवगीत' की एक बानगी द्रष्टव्य है -

''आ गए बादरे !
केश बिखरे हुए, आँख अंजन-अँजी,
कंठ में दोलड़ा स्वर्ण-कंठी सजी ।
दूबरी-दूबरी, झाँवरी-झाँवरी-
आ गए हैं धरा को लगाने गरे ।
आ गए बादरे !''

'नबगीत' की कतिपय उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं - 1. बौद्धिकता का अतिरेक, 2. काम-कुंठाओं का अतिशय वर्णन, 3. अनिश्चित जीवन-दृष्टि, 4. असामाजिक भावनाओं की निराधार अभिव्यक्ति, 5. नवीनता, आधुनिकता, ऐतिहासिकता और वैज्ञानिक युगबोध, 6. लोकजीवन के तत्वों का गीतों में अनुबंधन, 7. नवीन बिंबयोजना 8. सरल भाषा एवं संक्षिप्तता ।

नवगीतकारों के उल्लेखनीय नाम हैं - अज्ञेय, नरेश मेहता, हरिनारायण

व्यास, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वरदयाल, विजयदेवनारायण, केदारनाथ सिंह, वीरेंद्र मिश्र, जगदीश गुप्त, श्रीकांत वर्मा, कैलाश वाजपेयी, सोम ठाकुर, चंद्रमौलि उपाध्याय, ओमप्रभाकर, देवेंद्र कुमार, मलयज, मुद्राराक्षस, बुद्धिनाथ मिश्र, रवींद्र भ्रमर, ठाकुरप्रसाद सिंह, राजेंद्र किशोर, नीरज, राही, रमानाथ अवस्थी, रामावतार त्यागी, शलभ, घनश्याम अस्थाना इत्यादि ।

28.5. साठोत्तरी हिंदी कविता

1960 ई. के बाद एक ओर तो लघु पत्रिकाओं की बाढ़ आ गई और दूसरी ओर प्रत्येक लघु पत्रिका की छत्रच्छाया में कोई-न-कोई नया वाद पनपने लगा । कतिपय वर्षों में हिन्दी कविता में इतने प्रकार की कविताएँ उभर आईं कि उन्हें देखकर आश्चर्य होता है । विभिन्न संज्ञाओं से अभिहित इन काव्यांदोलनों में अधिकांश तो ऐसे हैं जो पनपने के साथ ही मुरझा गए, पुनः अंकुरित नहीं हो सके । कुछ तो वर्ष, दो वर्ष या अधिक से अधिक पाँच-सात वर्ष की आयु भोगकर काल-कवलित हो गए । जो आंदोलन अपेक्षाकृत अधिक स्थिर एवं सुदृढ़ हो पाए, उन्हें तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है - 1. निषेधमूलक, 2. संघर्षमूलक तथा 3. आस्थामूलक । निषेधमूलक वर्ग में उन आंदोलनों को समहित किया जा सकता है, जिन्होंने परंपरागत सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का निषेध करते हुए घोर व्यक्तित्ववाद, उच्छृंखल थौनवाद एवं नग्न भोगवाद को प्रश्रय दिया । संघर्षमूलक वर्ग के आंदोलनों में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति असंतोष तथा आक्रोश व्यक्त करते हुए उनके विरोध में संघर्ष का आह्वान किया गया । आस्थामूलक वर्ग के आंदोलनों में परंपरागत मूल्यों को सकारते हुए उनकी पुनः प्रतिष्ठा पर जोर दिया गया ।

28.6. निषेधमूलक कविता

द्वितीय विश्वयुद्ध के खत्म होने के बाद यूरोप और अमरीका के साहित्यिक क्षेत्र में अनेक ऐसे आंदोलन पनपे जिनका नजरिया पूर्णतः निशेधपरक था । उन्होंने अपने समाज की परंपरागत मान्यताओं, नीतियों, नैतिक आदर्शों, शिष्टता, मर्यादाओं आदि का खुलकर विरोध किया । इन आंदोलनों के साथ जुड़े युवावर्ग को अलग-अलग देशों में अलग-अलग नाम दिए गए । फ्रांस में इन्हें, 'समकालीन पीढ़ी' एवं 'विश्वासघाती' कहा गया । इंगलैंड में इन्हें 'आक्रोश पीढ़ी' के नाम से पुकारा गया । इन्हीं के समानांतर अमरीका में 1956 ई. में 'बीट जैनरेशन' की स्थापना हुई । हिन्दी के निषेधमूलक आंदोलनों का इसी 'बीट जैनरेशन'से सीधा संबंध है । बीट जैनरेशन के प्रतिस्थापकों में जैक कैरूआफ एवं एलेन गिंसबर्ग के नाम प्रमुख हैं । 1962-63 के आसपास एलेन गिंसबर्ग अपने कुछ साथियों के साथ भारत आए तथा वे यहाँ लगभग दस माह रहे । सैकडों युवा साहित्यकारों ने इनके संपर्क में आकर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव ग्रहण किया । ऐसी स्थिति में स्वाभाविक था कि भारत का वह युवावर्ग जो पहले से ही भारतीय आदर्शों तथा संस्कारों से विभ्रांत होकर पश्चिम के अंधानुसरण के लिए लालायित था, तत्काल इनके प्रभाव में आ गए । फलस्वरूप बँगला कविता में 'भूखी पीढ़ी' आंदोलन तेजी से उभरा तथा आगे चलकर उसी की नकल पर हिंदी में 'विद्रोही पीढ़ी', 'बीटनिक कविता', 'अकविता', 'अस्वीकृत कविता', 'श्मशानी पीढ़ी' आदि अलग-अलग नामों से कई काव्यांदोलन विभिन्न व्यक्तियों के नेतृत्व में प्रवर्तित हुए । इन सभी का बीजमंत्र एक ही है - अस्वीकृति या निषेध, किंतु उसकी अभिव्यक्ति प्रत्येक ने अपने-अपने ढ़ंग से की है ।

अकविता

निषेधमूलक काव्य-आंदोलन 'विद्रोही पीढ़ी', 'अभिनव काव्य', 'बीट कविता',

'अकविता' आदि नामों के रूप में प्रचलित हुए । सातवें दशक के प्रारंभ में इलाहाबाद से सात कवियों का एक काव्यसंग्रह 'विद्रोही पीढ़ी' नाम से प्रकाशित हुआ । 1963 ई. में जगदीश चतुर्वेदी के संपादन में चौदह कवियों का काव्यसंग्रह 'प्रारंभ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ, जिसमें 'अभिनव काव्य' की स्थापना का दावा किया गया । यह 'अभिनव काव्य' नई कविता से ही प्रेरित है । 'प्रारंभ' के संपादक का लक्ष्य नई कविता का विरोध करना नहीं अपितु उससे जुड़ना था । वे यह भी चाहते थे कि नई कविता की अत्याधुनिक उपलब्धियों का श्रेय उन्हें ही दिया जाए । जगदीश चतर्वेदी जब नई कविता के साथ जुड़ने में सफल नहीं हो सके, तो 1964 ई. में उन्होंने डॉ. इंद्रनाथ मदान एवं रमेश कुंतल 'मेघ' द्वारा संपादित 'अभिव्यक्ति' में नई कविता के विरोध में वक्तव्य देते हुए 'अभिनव काव्य' को एक नया नाम 'एंटी पोइट्री या अकविता' दे डाला । जो नई कविता 1963 ई. तक उनके लिए समस्त गुणों की खान थी, वही अब सर्वथा परित्यक्त बन गई । 'अभिव्यक्ति' में नई कविता के विरोध के साथ-साथ 'अकविता' का चार्टर तथा उसकी विशेषताओं का संकेत भी प्रस्तावित किया गया -

(क) 'उन रूढ़ियों से मुक्ति जो कि अनायास ही नई कवितावादियों द्वारा संश्लिष्ट हैं ।

(ख) 'अत्याधुनिक काव्य-बोध जो अपने वर्तमान के प्रति पूर्ण सजग है, सक्रिया है ।'

(ग) 'अतीत के प्रति आकर्षण की दुर्बलता से मुक्ति ।'

(घ) 'अपनी पूरी तल्लीनता के साथ भोगे हुए क्षणों की एक तटस्थ अन्वेषक की भाँति अभिव्यक्ति ।'

(ङ) 'भाषा, प्रतीक योजना, बिम्ब-विधान आदि सभी पूर्ववर्ती कवियों से नितांत भिन्न ।'

(च) 'नैतिकता की सभी परंपरागत व्याख्याओं को नकारना ।'

(छ) 'जीवन के विभिन्न विरोधाभासों को एक नया संदर्भ देना ।'

(ज) 'एक सचेत बौद्धिक दृष्टिकोण लेकर कविता के शिल्प तथा वस्तु को एक सर्वथा नया रूप प्रदान करना ।'

एक्त घोषणापत्र के संदर्भ में जगदीश चतुर्वेदी का नजरिया इस नए काव्य-आंदोलन के नाम के संबंध में स्पष्ट और स्थिर नहीं है । कहीं वे इसे 'एण्टी काव्य' कहते हैं, कहीं 'अभिनव काव्य' और कहीं 'आक्रोशी कविता' । किंतु, 1965 ई. में श्याम परमार कें संपादन में 'अकविता' पत्रिका विधिवत् आरंभ हो जाने से यही नाम स्थिर हो गया । 'अकविता' में सृजनात्मक दृष्टि की अपेक्षा ध्वंस को, संघटन की अपेक्षा विघटन को, सूक्ष्म तत्वों की अपेक्षा शारीरिक भोग को, जीवन के स्वस्थ-दर्शन की अपेक्षा मृत्यु-दर्शन को, गाँवों की अपेक्षा नगर की कुंठाओं को तथा समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्व दिया गया है । 'अकविता' वस्तुतः निषेधात्मक मूलयों की कविता है । 1973 ई. में प्रकाशित जगदीश चतुर्वेदी के नए काव्य-संग्रह 'निषेध' से यह और स्पष्ट हो जाता है ।

28.7. अकविता की प्रवृत्तियाँ

अकविता काव्य में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ द्रष्टव्य हैं ।

28.7.1. परंपरागत तत्वों एवं धारणाओं की अस्वीकृति

अकविता आंदोलन के कवियों ने धर्म, जाति, समाज, राष्ट्र, संस्कृति एवं नैतिकता से संबंधित प्रायः सभी परम्परागत तत्वों, धारणाओं एवं मूल्यों को अस्वीकार किया है । फलस्वरूप कहीं उन्होंने ईश्वर का मजाक उड़ाया है तो कहीं धर्म, समाज और नैतिकता के परंपरागत मूल्यों की खिल्ली उड़ाई है । इसी प्रकार, उन्होंने अपने पूर्वजों तथा पारिवारिक अग्रजों के प्रति भी घोर अवमानना का परिचय दिया है । पारिवारिक मर्यादाओं और सामाजिक एवं नैतिक आदर्शों का भी इनकी नज़र में कोई महत्व नहीं है । इन्होंने राष्ट्रीय गौरव, राष्ट्रभक्ति, देशप्रेम आदि की भी घोर निंदा की है तथा देश-प्रेम का 'एक अय्याशी का दिया हुआ महामंत्र' घोषित किया है -

(i) ''मुझे अब नहीं करना है विश्वास
बदलते आकाश पर रिरियाते ईश्वर पर ।''

(ii) ''बच्चा था तो पिता नाम का जन्तु
बाहर निकलने पर रोक लगाता था ।''

28.7.2. उच्छृंखल भोगवाद

अकवितावादियों के काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति उच्छृंखल भोगवाद, नग्न यौनाचार तथा अस्वाभाविक काम-प्रयासों के निरूपण की है । इन्होंने अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए न केवल नारी को उपभोग्य घोषित किया है, अपितु पशु-पक्षियों के साथ भी अप्राकृतिक संबंध स्थापित करने में किंचित् संकोच नहीं किया है । फलस्वरूप, कहीं वे 'मरी हुई नारी के साथ संभोग' में तल्लीन दिखाई पड़ते हैं तो कहीं विभिन्न मादा पशु-पक्षियों से यौन-क्रीड़ा की कोशिश करते हैं । कवियों द्वारा तो अश्लील और फूहड़ उक्तियाँ कही गई ही हैं, कवयित्रियों ने भी अश्लीलता और नग्नता का निर्लज्जतापूर्ण वर्णन किया है -

''सुबह होने से लेकर दिन डूबने तक
मैं इंतजार करती हूँ रात का,
जब हम दोनों एक ही कोने में सिमट कर
एक दूसरे को कुत्ते की तरह चाटेंगे ।
विवाह के बाद जिंदा रहने के लिए
जानवर बनना बहुत जरूरी है ।''

28.7.3. मानवता के महाविनाश की कामना

अकविता के प्रस्तोता समस्त मानवता के विनाश की कामना करते हैं । विश्व की सारी यात्राओं को दुर्घटनाओं में बदल देना चाहते हैं ताकि मानवता के महानाश की लीला का आनंद ले सकें । इस प्रतिस्पर्द्धा में कवयित्रियाँ भी पीछे नहीं हैं -

''मैं तमाम यात्राओं को दुर्घटना में बदलना चाहता हूँ ।
मैं प्रेम करते युग्मों को आग में जलते कंटूरों पर विठाकर

[मांस-गंध को चिरचिराते देखना चाहता हूँ ।]
मैं चाहता हूँ विनाश -
इन कीड़ों से मानव पिंडों के लिए मेरे मन में कोई दया नहीं ।''

28.7.4. जनतंत्र का विरोध

अकवितावादियों को वैसे तो प्रत्येक प्रकार की व्यवस्था से घृणा है, पर जनतंत्र के प्रति उनकी विशेष अरूचि है । इन्हें विरोधों और असंगतियों के आकलन में दक्षता प्राप्त है । युग की हीनताओं, विडंबनाओं तथा विकृतियों का चित्रण अकविता में भरपूर हुआ है -

''मुझे तानाशाही से लगाव है,
जनतंत्र के रिरियाते गीदड़ से नहीं,
मुझे वेश्यालयों में गंदगी नजर नहीं आती ।''

28.7.5. कविता के प्रति गंभीर दृष्टिकोण का अभाव

अकविता वर्ग के कवियों का कविता के प्रति कोई गंभीर नजरिया नहीं है । उनके लिए कविता एक छिछले मनोरंजन की सामग्री है । जगदीश चतुर्वेदी के विचार से कविता का महत्व इतना ही है कि उससे व्यक्ति 'स्मार्ट' लगता है । अच्छी कविता लिखने के लिए कवि को सूट-बूट और हैट पहनना चाहिए । लँगोट लगानेवाले और लिजलिजी धोती पहननेवाले लोग कविता नहीं लिख सकते । अकवितावादियों के विचार से सफल कविता के लिए सबसे बड़ा गुण 'लोगों की नींद हराम करना' है । इस संबंध में इनकी कुछ उक्तियाँ पेश हैं -

(क) कविता अब एक लंगोट और लिजलिजी धोती से परे हैट में मिलती है ।

(ख) आपको अकविता माफिक नहीं आती
आप ताकत की गोलियाँ लीजिए
और सिर पर सुगंधित तेल की बारह महीने तक मालिश कीजिए ।

(ग) कविता के जरिए क्रांति होना नमुमकिन है ।
हाँ आप चाहें
तो इसरे [illegible] में लट्ठ भाँज सकते हैं ।

28.8. संघर्षमूलक कविता - जनवादी कविता

सातवें दशक में हिन्दी-कविता के क्षेत्र में अनेक ऐसे आंदोलन पनप रहे थे, जिन्हें संघर्षमूलक कहा जा सकता है । ये आंदोलन व्यापक सामाजिक चेतना से अनुप्राणित थे । कविता के द्वारा अपने युग और समाज को संघर्ष और विद्रोह की प्रेरणा दी गयी है । अधिकांश कवियों ने समसामयिक परिस्थितियों तथा सामाजिक परिवेश से प्रेरित होकर ही क्रांति का आह्वान किया है ।

हिन्दी कविता का वर्तमान युग जनवादी काव्यधारा के कवियों का है । इन कवियों ने एक ओर तो वर्ग-संघर्ष से संत्रस्त मानवों के प्रति गहन संवेदना व्यक्त करते हुए इसके लिए उत्तरदायी व्यवस्था के विरूद्ध तीव्र आक्रोश प्रकट किया है और दूसरी ओर स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भी बहुसंख्यक जनता को अभावों, कष्टों और पीड़ाओं में तल्लीन देखकर स्वदेशी शासकों के अनुचित कार्यों के प्रति प्रखर व्यंग्य-बाणों की बौछार की है । निस्संदेह, जनवादी कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नई चेतना जागृत की है, नई क्रांति की प्रेरणा दी है, शोषकों को फटकर सुनाई है, शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति स्वक्त की है, अन्याय का प्रतिकार किया है, अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाई है, साम्राज्यवाद का घोर विरोध किया है, मानव-प्रेम का प्रसार किया है, जन-जीवन को उन्नत एवं उत्कृष्ट बनाने के लिए प्रोत्साहन दिया है, प्राचीन रूढ़ियों को समाप्त करने के लिए अभियान चलाया है, परंपराओं का उच्छेद किया है, धरती, जनता एवं श्रम के गीत गाए हैं तथा हर प्रकार के भेदभाव एवं वैषम्य को मिटाने का भरसक प्रयास किया है । आज का कवि जनता के दुःख-दर्द को समझता है, राजनीतिक गतिविधियों पर कड़ी नजर रखता है, नेताओं के काले कारनामों पर आक्रोश प्रकट करता है, भ्रष्ट नेताओं का खुलकर विरोध करता है, पद-दलित मानवता को ऊपर उठाता है, नव-चेतना का शंखनाद

करता है, अत्याचारियों से जूझने के लिए जनता को सचेत और सावधान करता है, अन्याय के विरूद्ध वातावरण तैयार करता है और दासता एवं शोषण से संत्रस्त मानवाता को प्रगति की ओर उन्मुख करता है ।

संघर्षमूलक काव्यांदोलन को आगे बढ़ाने में 'युयुत्सा', 'रूपांबरा', और 'कविता' पत्रिकाओं के अलावा हरीश मादानी के संपादन में प्रकाशित 'वातायन' एवं उनके द्वारा प्रवर्तित 'आज की कविता' आंदोलन का भी योगदान रहा है । इतना ही नहीं 'आमुख', 'शताब्दी', 'उत्कर्ष', 'वाम', 'फौलाद', 'सामयिक', 'शनीचर' आदि लघु पत्रिकाओं ने भी संघर्षमूलक कविता की जमीन तैयार करने में महत्वपूर्ण योग दिया है । इस वर्ग के आंदोलन के साथ जुड़नेवाले कवियों में उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त धूमिल, कुमार विमल, ज्ञानेंद्रपति, हरिहर द्विवेदी, रमेश गौड़, श्रीराम तिवारी, विजेंद्र, श्रीहर्ष आदि उल्लेखनीय हैं ।

संघर्षमूलक कविता की प्रवृत्तियाँ हैं - वर्तमान विसंगतियों का चित्रण, आधुनिक जनतंत्र पर आक्षेप, संघर्ष और युद्ध की अनिवार्यता, क्रांति की सफलता के प्रति अटूट आस्था तथा अभिव्यंजना-शैली में सहजता ।

28.9. आस्थामूलक कविता - सहज कविता

हिंदी कविता के क्षेत्र में, सातवें दशक में, जिन आंदोलनों ने अतियथार्थवादी, व्यक्तिवादी, भोगवादी तथा अनास्थावादी प्रवृत्तियों को चुनौती दी, उनमें 'सहज कविता' नामक काव्यांदोलन विशेष उल्लेखनीय है ।

1967 ई. में डॉ.रवींद्र भ्रमर द्वारा 'सहज कविता' आंदोलन का प्रवर्तन किया गया । इसकी विज्ञप्ति में घोषित किया गया है कि 1960 ई. के बाद के काव्यांदोलनों में शिल्प और शैली का प्रदर्शन ही अधिक है । उनके मूल में स्वस्थ

प्रवृत्तियों अथवा व्यक्ति-समूह को प्रचारित करने का कौतुक बहुत कम है । कविता के इन तथाकथित सूत्रधारों ने या तो मरे हुए विदेशी आंदोलनों का आयात किया है या फिर अनास्था और हीनतापूर्ण दलीलें दे करके नई पीढ़ी को गुमराह करने की साजिश की है - अहम्मन्यता, आत्महत्या, योनि और जंघाओं पर कविता लिखने की प्रेरणा दी है । अतएव आज एक ओर कुंठाएँ और विकृतियाँ हैं और दूसरी ओर चमत्कार एवं अनुकरणमूलक प्रवृत्तियाँ, जिनके कुहासे में कविता गुम है । 'सहज कविता' नये सिरे से कविता की खोज करना चाहती है । अतः 'सहज कविता' का उद्देश्य काव्य के क्षेत्र में आस्थामूलक प्रवृत्तियों को प्रतिष्ठित करना है ।

'सहज-कविता' की माँग व्यष्टिमूलक होते हुए भी समाजसापेक्ष है । इस धारा के साथ जुड़नेवाले कवियों में अजय कुमार, ओम प्रभाकर, कुंतल कुमार जैन, केवल गोस्वामी, दिनकर सोनवलकर, डॉ. देवराज, नर्मदाप्रसाद त्रिपाठी, डॉ. परमानंद श्रीवास्तव, बजरंग विश्नोई, मोहन वर्मा, श्रीकांत जोशी, डॉ.विश्वनाथ शुक्ल, शिवप्रताप सिंह, श्यामसुंदर घोष, हरीश भदानी आदि उल्लेखनीय हैं ।

उपर्युक्त कवियों की रचनाओं से स्पष्ट हो जाता है कि 'सहज कविता' में जीवन के सभी पक्षों का चित्रण सहज और स्वाभाविक रूप में हुआ है । पुरूष और नारी के पारस्परिक आकर्षण एवं उसके भावात्मक संबंधों की अभिव्यक्ति भी स्वाभाविक रूप में हुई है । आधुनिक जीवन की विभिन्न स्थितियों, विसंगतियों एवं विषमताओं के भी यथार्थ चित्रण उपलब्ध हैं । 'सहज कविता' की अभिव्यक्ति-शैली भी स्वाभाविक है । उसमें अस्पष्टता, दुरूहता, जटिलता, अश्लीलता, नग्नता अथवा उच्छृंखलता के दर्शन नगण्य हैं । इस कविता का एक उदाहरण -

''तुम्हारे घर से विदा होते समय
चाहा था मैंने वापस कर दूँ

वह गुलाब का फूल
जिसे तुमने रख दिया था
एक दिन मेरी मेज पर ।''

28.10. समकालीन कविता

''समकालीन कविता'' का प्रवर्तन डॉ.विशंभरनाथ उपाध्याय ने 1976 ई. में अपनी पुस्तक 'समकालीन कविता की भूमिका' से किया । इसमें जहाँ एक ओर अकवितावादी कवियों को स्थान दिया गया है, वहीं दूसरी ओर 'संघर्षमूलक कविता' तथा 'विचार कविता' के कवियों को भी सम्मिलित कर लिया गया है । इस स्थिति को देखते हुए 'समकालीन कविता' को किसी अलग आन्दोलन की पहचान देने की अपेक्षा उसे हिंदी के सभी साठोत्तरी आंदोलनों का समुच्चय मानना अधिक उपयुक्त होगा । कतिपय आलोचक 'समकालीन कविता' को 'अकविता' तथा 'वाम कविता' से अलग मानते हुए 'विचार कविता' से संबद्ध करते हैं । 'विचार कविता' का प्रवर्तन आठवें दशक में हिंदी कविता के क्षेत्र में 'सचेतन' पत्रिका के जून 1973 ई. के 'विचार कविता विशेषांक' के माध्यम से हुआ । इस पत्रिका के संपादक हैं - डॉ.महीप सिंह तथा डॉ.नरेन्द्र मोहन ।

'समकालीन' शब्द अँग्रजी के contemporary का पर्याय तथा 'समसामायिक' का अर्थबोधक है । इससे प्रतीत होता है कि समकालीन कविता समसामयिक संदर्भों से संबद्ध है । साथ ही इसे युग-विशेष के संदर्भों के अनुसार बदली हुई चेतना या मानसिकता का द्योतक माना जाता है । डॉ.उपाध्याय का मुख्य प्रयोजन 'आधुनिकता' के नाम पर उछाली जानेवाली व्यक्तिवादी एवं समाज विरोधी प्रवृत्तियों का बहिष्कार करते हुए सामाजिक उत्थान में सहयोग देनेवाली प्रवृत्तियों को बढ़ावा देना था ।

'समकालीन कविता' में वर्तमान का सीधा खुलासा है । इसे पढ़कर वर्तमान काल का यथार्थबोध हो सकता है, क्योंकि इसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते-गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है । आज की कविता में काल अपने गत्यात्मक रूप में है । यह किसी 'कालक्षण' की कविता नहीं, कालप्रवाह की कविता है । इसमें असंतोष, रोष एवं विद्रोह का विस्फोट है । समकालीन कविता में मुक्तिबोधक चट्टानों, अंधड, लू-लपट, सिंह-गर्जन, उपहास, व्यंग्य, लताड़ और मार-धाड़ के विविध चित्र हैं । इसमें काल का 'होता हुआ' रूप है, जीवन और मूल्यों की अमूर्त धारणाओं के स्थान पर सताए हुए लोगों का विवेचन और विद्रोह है ।

डॉ. उपाध्याय ने समकालीन कविता के जरिए साठोत्तरी युग के उन सभी आन्दोलनों को समर्थन दिया है जो कि नई कविता के विरोध में खड़े हुए थे, परन्तु समकालीन कविता के परवर्ती व्याख्याताओं ने डॉ. उपाध्याय की उपर्युक्त मान्यताओं को अस्वीकार करते हुए उसे भिन्न अर्थ में स्वीकार किया है । वे समकालीन कविता को पूर्ववर्ती काव्यांदोलनों से अलग मानते हैं । उनकी धारणा है कि समकालीन कविता का केन्द्रबिन्दु विचार ही है, यही विचारबिंदु उसे अन्य काव्यांदोलनों से अलग पहचान देता है । अतः, 'समकालीन कविता', 'विचार कविता' का ही पर्याय है । उसमें 'विचार कविता' की विशिष्ट प्रवृत्तियों के संकेत भी प्रचुरता के साथ समाहित हैं ।

28.11. हास्य-व्यंग्य-प्रधान कविता

इसके अंतर्गत मुख्यतः हरिशंकर शर्मा, गोपाल प्रसाद व्यास, बेढब बनारसी, कांतानाथ 'चोंच', रमई काका, वंशीधर शुक्ल, श्रीनारायण चतुर्वेदी, चिरंजीत, काका हाथरसी, हुल्लड मुरादाबादी, निर्भय हाथरसी, अल्हड़ बीकानेरी, केशवचंद्र वर्मा, शैल

चतुर्वेदी आदि की हास्य-व्यंगय-प्रधान रचनाएँ आती हैं । इन कवियों के व्यंग्य का क्षेत्र समाज, शिक्षा, शासन तथा राजनीति तक व्याप्त है ।

गोपालप्रसाद व्यास

इनके अनेक उतकृष्ट-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं । इन्होंने जीवन के हर पहलू पर सुन्दर व्यंग्यात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । इनकी कविता का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

''अरजी दै दै जग मुआ, नौकर हुआ न कोय ।
पढ़े खुशामद का सबक, नौकर मालिक होय ।।''

हरिशंकर शर्मा

इनकी अनेक रचनाएँ प्रकाश में आई हैं । इन्होंने वर्तमान युग के नेताओं को अपने व्यंग्य का आधार बनाते हुए लिखा है -

''मिली जो जनतारूपी गाय, बडी भोली-भाली है हाय ।
दूह्य करता मैं दिन-रात, न कपिला कभी उठाती लात ।।''

बेढब बनारसी

इनका मूल नाम कृष्णदेव प्रसाद गौड़ है । इन्होंने अपनी रचनाओं में जीवन के विविध कुरूप पक्षों पर व्यंग्यात्मक आघात किया है । यहाँ एक बानगी प्रस्तुत है -

''नई तालीम का बेढब यही निकला नतीजा है ।
चचा के सामने लेडी लिए लेटा भतीजा है ।।''

कांतानाथ पांडेय 'चोंच'

इनकी व्यंगयात्मक रचनाएँ काफी लोकप्रिय हैं । इन्होंने आधुनिक नेताओं, राजनीति, फैशनपरस्त युवकों आदि को आलंबन बनाकर कटु व्यंग्य किया है । रचना की एक बानगी दर्शनीय है -

''चंदा औ पद-ग्रहण की, जब लग मनमें खान ।
पटवारी और पंत हैं दोनों एक समान ।।''

काका हाथरसी

इनकी रचनाओं में भी हास्य एवं व्यंग्य का प्राधान्य है । नए कवि को अपने व्यंग्य का आलंबन बनाते हुए वे लिखते हैं -

''कल शाम काफी हाउस में
कविराज 'शून्यजी' से अकस्मात ही भेंट हो गई,
वैसे तो अंग्रेजी के कद्रदाँ हैं
किन्तु जब हुई राष्ट्रभाषा हिन्दी
तब इधर भी छलांग मारने लगे ।
कविता का कचूमर निकालने लगे ।''

रमई काका, वंशधिर शुक्ल एवं श्रीनारायण चतुर्वेदी ने भी आधुनिक फैशनपरस्ती की खिल्ली खुलकर उडाई है ।

अन्य कवियों में पद्मधर त्रिपाठी, ऋतुराज, चंद्रकांत देवताले, लीलाधर जगूड़ी, विष्णुचंद्र शर्मा, प्रणवकुमार वंद्योपाध्याय, जितेन्द्र राठौर ['जमीन की आग', 'वसंत' तथा 'यायावर', जापानी कविताओं का उत्कृष्ट अनुवाद भी किया है], नचिकेता, चंद्रदेव सिंह, मुद्राराक्षस, अलखनारायण, रमेश गौड़, नगेंद्र चौरसिया, हृदयेश पांडेय, अक्षय उपाध्याय, श्रीराम शुक्ल, कांति कुमार, मृत्युंजय उपाध्याय [किन्तु, प्रत्यक्ष, वैश्वानर आदि], नवल, छविनाथ मिश्र, मानिक बच्छावत, शलभ, शंकर माहेश्वरी, नीलम श्रीवास्तव, सिद्धेश, आलोक शर्मा, सुरेन्द्रमोहन मिश्र, आनंदी सहाय शुक्ल, कर्णपाल सिंह, गंगाशरण तृषित, विनोददास, राजकुमार सिद्धार्थ, विनय देशमुख, विमलेश्वर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

आज की जनप्रिय कवयित्रियों में सुशील गुप्ता, माधुरी शुक्ल, प्रभा ठाकुर,

रेणु शर्मा, इंदिरा परमार, प्रभा खेतान ['अपरिचित उजाले' और 'सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं'] प्रेमलता, सारस्वत, मणिदिव्या, शशि तिवारी, शकुंतलारानी मल्लिक, शकुंतला श्रीवास्तव, श्यामा सलिल, मंजु सोढ़ी, सरोजिनी प्रीतम, सावित्री शुक्ल, अरूण कपूर, सुषमा वशिष्ठ, प्रोमिला सिंह, विधुलता गोस्वामी, आशारानी व्होरा, शांति मेहरोत्रा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

28.12. प्रमुख कवि

28.12.1. अज्ञेय

इनका पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' है । इनका जन्म 1911 ई. में देवरिया जिले के कसया नामक स्थान में हुआ । इनके पिता पं. हीरानंद पुरातत्व-विभाग में एक उच्च अधिकारी थे । अतः अज्ञेयजी को बचपन से ही घूमने का अवसर खूब मिला । इन्होंने देश के प्रमुख स्थानों का भ्रमण तो किया ही, विदेशों की यात्रा भी खूब कीं । 1987 ई. में इनका देहावसान हो गया ।

अज्ञेयजी हिन्दी जगत् में कवि, उपन्यासकार, कथाकार, निबंधकार, पत्रकार, आलोचक, गद्यगीतलेखक के रूप में विशिष्ट स्थान रखते हैं । इनके यथानिर्दिष्ट काव्य ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं : भग्नदूज, चिंता, इत्यलम् , हरी घास पर क्षण भर, बावरी अहेरी, इंद्रधनु रौंदे हुए थे, अरी ओ करूणामय प्रभामय, आँगन के पार द्वार और सुनहले शैवाल ।

अज्ञेयजी के काव्यविकास के तीन चरण हैं - 1. छायावादी भावभूमि पर आधृत कविताएँ, 2. प्रयोगवादी भावभूमि के निकट की रचनाएँ, 3. रहस्यभावना से परिपूर्ण रचनाएँ [आँगन के पार द्वार' तथा 'सुनहले शैवाल'] । इनके काव्य की मूल भावना व्यक्तिवादी अहंभाव से परिपूर्ण है । इनकी रचनाओं में हृदय की कोमलता,

चिंतन की गहराई और मनोवैज्ञानिक जटिलता का समावेश है । 'भग्नदूत' और 'चिंता' की छायावादी कविताओं से अपनी काव्य-यात्रा प्रारंभ करनेवाले अज्ञेयजी प्रयोगवाद और नई कविता के विशिष्ट कवि हैं । इन धाराओं के कवियों में इनका स्वर सबसे अधिक वैविध्यपूर्ण है । इनका स्वर 'अहं' से समाज तक, प्रेम से दर्शन तक, आदिम गंध से विज्ञान की चेतना तक, यन्त्र सभ्यता से लोक-परिवेश तक, यातना-बोध से विद्रोह की ललकार तक, प्रकृति-सौंदर्य से मानव-सौंदर्य तक फैला हुआ है । अज्ञेय के काव्य-सौष्ठव की विशेषताएँ हैं - प्रणयानुभूति, व्यक्तिनिष्ठा, क्षणानुभूति, जिजीविषा की भावना, आर्थिक असमानता का अंकन, क्रांति की भावना, नूतन सौंदर्यबोध, आध्यात्मिकता, स्वदेशानुराग, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, रमणीय बिंबविधान, लय एवं तुक-मुक्त छंछ-विधान आदि । अज्ञेय की रचना का उदाहरण -

''प्रेम को चिर ऐक्य कोई मूढ़ होगा तो कहेगा

विरह की पीड़ा नहीं तो प्रेम क्या जीता रहेगा ? ''

28.12.2. नागार्जुन

नागार्जुन आधुनिक युग की नवचेतना के प्रतीक हैं । इनका वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र है । इनका जन्म तरौनी (जिला दरभंगा) में 1910 ई. में हुआ था । आप 1930 ई. से बराबर साहित्य-रचना में प्रवृत्त रहे । पहले आप 'यात्री' के नाम से लिखा करते थे, किन्तु 1937 ई. में बौद्धधर्म स्वीकार करने के पश्चात् आपने अपना नाम 'नागार्जुन' रखा और 'नागार्जुन' के नाम से ही साहित्य-सेवा में तल्लीन रहे । पहले कुछ दिन बौद्ध-भिक्षु बनकर आपने श्रीलंका, तिब्बत, बर्मा आदि देशों की यात्रा दो बार कीं । पुतः 1941 ई. में आप गृहस्थ हो गए और सफल गृहस्थ के रूप में भी साहित्य-सर्जन में निरत रहे । आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अमिट छाप

डालनेवाले दो व्यक्ति हैं - महापंडित राहुल सांकृत्यायन और कविवर सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ।

राहुलजी से प्रेरित होकर जहाँ नागार्जुन ने राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण किया, वहीं निरालाजी से प्रेरित होकर उन्होंने साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश किया । फलस्वरूप, राजनीतिक दृष्टि से जहाँ नागार्जुन पूर्णतया साम्यवादी विचारधारा को लेकर चले, जिसमें यथार्थ के सुदृढ़ धरातल पर मानव-जीवन के चित्र अंकित किए गए हैं । निराला की तरह नागार्जुन ने पीड़ित जनता के कष्टों को स्वर प्रदान किया है । अभावग्रस्त निम्नवर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट की है, अभावों में पालित-पोषित तथा कष्टों से जूझनेवालों के प्रति संवेदना व्यक्त की है, समाज की यंत्रणाओं और पीड़ाओं से समस्त मानवों के उत्थान के लिए क्रांति का आह्वान किया है, उच्च समाज के शोषण-कार्यों का विरोध किया है और वीरता के साथ संघर्षरत सर्वहारा-वर्ग का गुणगान किया है । उन्होंने एक ओर वर्ग-संघर्ष से संत्रस्त मानवों के प्रति गहन संवेदना व्यक्त करते हुए इसके लिए उत्तरदायी व्यवस्था के विरूद्ध आक्रोश व्यक्त किया हे और दूसरी ओर स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भी बहुसंख्य जनता को अभावों, कष्टों एवं पीड़ाओं में लीन देखकर स्वदेशी शासकों के अनुचित कार्यों के प्रति प्रखर एवं प्रकृष्ट व्यंग्य-बाणों की बौछार की है ।

नागार्जुन की कविताओं के संकलन प्रकाशित हैं - 'युगधारा', 'प्यासी पथराई आँखें' और 'सतरंगे पंखोंवाली' । इनके अतिरिक्त 'खून और शोले', 'प्रेत का बयान', 'चना जोर गरम', 'अब तो बंद करो हे देवि यह चुनाव का प्रहसन' नामक लघु पुस्तिकाएँ भी हैं, जो उनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं । इनके इलावा काम-दहन के प्रसंग पर आधृत 'भस्मांकुर' खण्डकाव्य भी है । कतिपय रचनाएँ या तो गुम हो गई हैं या अप्रकाशित हैं । इस प्रकार, नागार्जुन के काव्य की प्रवृत्तियों का अनुशीलन

करने पर यथानिर्दिष्ट विशेषताएँ दिखाई पडती हैं - प्रणय-भावना, वैयक्तिकता, सामाजिक यथार्थ, स्वदेशानुराग, प्रकृति-प्रेम, विद्रोही मनोवृत्ति, समसामयिकता, श्रद्धांजलियाँ, भाषागत सारल्य, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, बिंबांकन, अलंकार और छंदयोजना । नागार्जुन की कविता का उदाहरण -

''चना है बना मसालेदार
खाइए भी तों यह सरकार
मिलेगा परमिट बारंबार
मिलेंगे सौदे सभी उधार
नया हो जाएगा घर-बार
कि लद-लद कर आएगी कार ! ''

28.12.3. गजानन माधव मुक्तिबोध

मुक्तिबोध नई कविता के प्रतिनिधि कवि हैं । आधुनिक जीवन-मूल्यों की सशक्त और जीवंत अभिव्यक्ति मुक्तिबोध के काव्य की विशेषता है । उनकी कविता में आधुनिक समाज की विसंगतियों तथा विडंबनाओं का चित्रण करने के लिए ऐसे विषयों एवं संदर्भों का चयन किया गया है, जो जीवन की वास्तविकता से संबंध रखते हैं और पूर्णतः नए हैं । औद्योगिक युग के प्रभावों तथा बदलते हुए परिवेश के संपूर्ण संदर्भों को एक नया आयाम देने की उनकी कवि-चेष्टा निस्संदेह सराहनीय है । उनकी कविता में एक गहन अंतर्वेदना है, भावों के ज्वार के पीछे विचारों की गहनता है तथा कोरी भावुकता के स्थान पर गंभीर बौद्धिकता है । उनकी रचनाओं में एक स्वस्थ सामाजिक चेतना, लोकमंगल-भावना तथा जीवन के प्रति एक व्यापक दृष्टिकोण विद्यमान है । समाज, राजनीति, धर्म, इतिहास, साहित्य आदि सभी विषयों पर उन्होंने कविताएँ लिखी हैं । वस्तुतः उनकी कविता अनेक स्वरों से गुंफित है । दहशत, त्रास, खौफ, अकेलापन, आस्था, अनास्था, तड़पन, अकुलाहट, शंका, विश्वास, सादगी, तनाव, टेढ़ापन, टूटन आदि उनकी रचनाओं में विद्यमान हैं ।

उनकी कविताओं में क्षणवाद के स्थान पर शाश्वत आशावाद, जीवन की कुरूपता और नश्वरता के स्थान पर उसकी सुन्दरता और गतिशीलता, निराशा के स्थान पर आस्था तथा व्यक्ति के अहं के स्थान पर समष्टिगत चेतना चित्रित है । काव्य-सृजन के प्रति उनका नजरिया सदैव प्रगतिशील रहा है । अतः उन्हें आधुनिक हिन्दी-कविता के किसी वाद के संकीर्ण कटघरे में आबद्ध करना उचित नहीं है । मुक्तिबोध पर टालस्टाय, बर्गसाँ और मार्क्सवाद का स्पष्ट प्रभाव है ।

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' एवं 'भूरी भूरी खाक धूल' आदि काव्य मुक्तिबोध की उत्कृष्ट कविताओं के संकलन हैं । कुछ कविताएँ 'तारसप्तक' में भी प्रकाशित हुई हैं । इन कविताओं में पर्याप्त विषय-वैविध्य है ।' मुक्तिबोध अपने कवि और काव्य व्यक्तित्व को पृथक करनेवाले न थे । जिंदगी के एक-एक संघर्ष और तनाव को वे एक बार जीवन में जीते थे और दुबारा अपनी कविताओं में । आलोचकों ने उनके काव्य का मूल्यांकन विविध दृष्टियों से किया है । कभी बिंब और प्रतीक-विधान की दृष्टि से, कभी फैंटेसी की दृष्टि से, कभी संगति-विरोध के आधार पर तो कभी रहस्यात्मक आधार पर । इन्हीं दृष्टियों और आधारों के कारण कभी उनकी कविता को सरल कहा गया है तो कभी जटिल, कभी रहस्यमय तो कभी यथार्थपरक । कवि के लिए कवि-कर्म श्रमसाध्य एवं मस्तिष्क की क्षमताओं का बल-प्रयोग है । स्वभावतः उनकी कविताओं में बौद्धिक प्रतीक-विधान पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है । उनकी अनेक रचनाओं का काव्य रूप फैंटेसी है । युग-बोध के गहन मंथन के पश्चात् वे इसी नतीजे पर पहुँचे थे कि भयानक यथार्थ का साक्षात्कार फैंटेसी के ज़रिए ही किया जा सकता है । यथार्थ की कलात्मक परिणति फैंटेसी में परिवर्तित हो जाती है । वे तो एक लोहार हैं जो एक ही चोट में अपनी बात कह देते हैं । वे आत्मा,

शरीर, विचार और व्यवहार से कवि हैं । वे सच्चे अर्थों में एक अनुभूतिशील कवि हैं । उनका संपूर्ण व्यक्तित्व ही काव्य है ।

अपनी रचनाओं में फैंटेसी अपनाने के कारणों का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं -

''मैं विचरण करता हूँ एक फैंटेसी में
यह निश्चित है कि फैंटेसी कल वास्तव होगी ।''

28.12.4. शमशेर बहादुर सिंह

हिन्दी के नए कवियों में शमशेर बहादुर सिंह का विशिष्ट स्थान है । उनकी कविता प्रगति तथा प्रयोग दोनों दिशाओं में एक-एक पग रखे हुए अपने प्रगति पथ पर अग्रसर हुई है । उनकी कविता लोकप्रिय अँग्रेजी कवि एजरा पाउंड के अधिक निकट है । वस्तु की अपेक्षा रूप-विधान के प्रति सजगता एजरा पाउंड का वैषिष्ट्य है और शमशेर ने उनसे इसे ग्रहण किया है । शमशेर अनेक देशी-विदेशी कवियों से प्रभावित हैं, पर प्रभाव-ग्रहण के बावजूद उनकी कविता अपना रास्ता खुद बनाती है । उनकी कविता अपने चारों ओर व्याप्त परिवेश में गहरी दिलचस्पी लेती प्रतीत होती है । शिल्प और वस्तु-विधान के क्षेत्र में उन्होंने जो मौलिकता दिखाई है, उससे वे किसी वाद की परिधि में नहीं बाँधे जा सकते ।

कुछ कविताएँ - 'कुछ और कविताएँ' शमशेर का एक चर्चित कविता-संग्रह है । इसके अलावा 'उदिता' तथा 'दूसरा सप्तक' में भी इनकी कविताएँ संकलित हैं । शमशेर की कविता में रूप-विधान के प्रति अतिशय जागरूकता ने उसे प्रायः जटिल और दुरूह बना दिया है । बिम्बों-प्रतीकों, उपमानों और संगीतात्मक ध्वनियों का चमात्कारपूर्ण प्रयोग कविता को विचित्रता तो अवश्य प्रदान करता है, पर वह जन-संवेद्य नहीं बन पातीं । अत्यंत सूक्ष्म प्रतीक-विधान और खंडित बिंब योजना के

कारण पूरी कविता अपने अपेक्षित प्रभाव के साथ पाठक के हृदय पर स्पष्टतया उभर नहीं पाती । फिर भी, आधुनिक हिन्दी-कवियों में शमशेर का महत्वपूर्ण स्थान है । उनकी कविता का एक नमूना प्रस्तुत है -

''घेरने को दुर्ग की दीवार मानो -
अचल विंध्या पर
कुंडली खोली सिहरती चाँदनी ने
पंचमी की रात । घूमता उत्तर दिशा को सघन पथ
संकेत में कुछ कह गया ।''

28.12.5. त्रिलोचन शास्त्री

त्रिलोचन शास्त्री भी आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण नाम है । 'उस जनपद का कवि हूँ', 'शब्द', 'धरती', 'ताप से तपाए हुए दिन' [साहित्य अकादमी से पुरस्कार प्राप्त कृति], 'चैती' आदि उनके अनेक महत्वपूर्ण संग्रह हैं । शास्त्रीजी की एक बड़ी विशेषता उनके सॉनेट हैं । सॉनेट को हिन्दी कविता में ढ़ालने, सजाने और प्रस्तुत करनेवाले वे अकेले कवि हैं । खड़ीबोली हिन्दी के अलावा उन्होंने अवधी में भी कविताएँ लिखी हैं । इस तरह वे लोक कवि भी हैं । हिन्दी के अतिरिक्त वे संस्कृत, उर्दू, अँग्रेजी और कई अन्य भाषाओं के विद्वान भी हैं । 'चंपा' और 'नगई महरा' जैसी उनकी कविताएँ हिन्दी पाठकों और आलोचकों में काफी लोकप्रिय हुई हैं । उनकी कविता का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

''इंद्रधनुष कितने
इच्छाओं के
बन-बन कर मिटते हैं
साँवली घटाओं के ।
कीचड़ ही पैरों के
आस-पास होता है ।''

28.12.6. भवानीप्रसाद मिश्र

भवानीप्रसाद मिश्र हिन्दी के उन कवियों में से हैं, जिनका पुरातनता के प्रति अगाध लगाव है । गाँधीवाद और अद्वैत दर्शन के प्रति लगाव ने ही उन्हें प्राचीनता से सामंजस्य बनाए रखने की प्रेरणा दी । उनका साहित्य रवीन्द्रनाथ ठागोर तथा अँग्रेजी कवि वड्र्सवर्थ के कविता-संबंधी आदर्शों से अधिक प्रभावित प्रतीत होता है । उनकी काव्य-चेतना व्यष्टिपरक कम समष्टिपरक अधिक है । उन्हें सच्चा कवि-हृदय मिला है। वे नई कविता के पक्षधर रहे हैं । अनुभूति की मार्मिकता और अभिव्यक्ति की सरलता के कारण उनकी कविताएँ जन-मानस पर व्यापक प्रभाव डालती हैं । उनकी कविता में सर्वत्र मानवतावादी स्वर और नवजीवन-सौंदर्य विद्यमान है । शब्दसंस्कार के प्रति सजगता, संकुल मानव की मानसिक जटिलता, जीवन की तल्खी और सपाटबयानी आदि प्रवृत्तियाँ उनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होती हैं ।

'गीत फरोश', 'चकित है दुःख', 'अँधेरी कविताएँ', 'बुनी हुई रस्सी', 'गाँधी पंचशती', आदि उनके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं । कतिपय कविताएँ ''दूसरा सप्तक' में संकलित हैं । उनकी लोकप्रियता का रहस्य प्रवाहमय सरल भाषा में रचना करना है । पुरातनता के प्रति लगाव के कारण ही वे मुक्त छंद में काव्य-रचना करने पर भी तुकाग्रह से मुक्त नहीं हो सके हैं । उनकी कविताओं में सामाजिक भावबोध का निश्छल अंकन है । यही कारण है कि वे बोलचाल के लहजे में महत्वपूर्ण बातें कह दिया करते हैं । अतः वे बौद्धिक तथा साधारण पाठकों में समान रूप से सराहे गए हैं । उदाहरण के लिए उनकी प्रसिद्ध व्यंग्य कविता 'गीत फरोश' की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

''जी हाँ हजूर मैं गीत बेचता हूँ ।
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ
मैं सभी किसिम के गीत बेचता हूँ ।''

28.12.7. धर्मवीर भारती

पद्मश्री से पुरस्कृत भारतीजी के काव्य में नई कविता के विकास की कई मंजिलें हैं । उनकी कृतियों में आज के युग की नई चेतना सन्निहित है । उनकी रचनाओं में सिद्धों का रतिवाद, वैष्णवों का महाभाव, अस्तित्ववादियों का क्षणवाद तथा छायावाद का रोमांस सब एकत्र मिलते हैं । भारती की कविताओं के मूल स्वर हैं-रूपासक्ति, मांसल प्रेम-वासना तथा जीवन, जो जीने योगय है, उसे भोगना है, उससे भागना नहीं है ।

भारती की प्रारंभिक कविताओं में कैशोर भावुकता है जबकि 'ठंडा लोहा,' 'सात गीतवर्ष' तथा 'कनुप्रिया' नामक परवर्ती रचनाओं में उनकी काव्य कला का परिष्कृत रूप दिखाई देता है । इन रचनाओं में भारतीजी ने जीवन की एक नई प्रक्रिया दर्शायी है । 'कनुप्रिया' में राधा-कृष्ण के प्रेम को चेतना के एक नए धरातल पर उकेरने की कोशिश की गई है तथा पौराणिक प्रेमाख्यान को वर्तमान-युग के सापेक्ष एक नए संदर्भ में उपस्थित किया गया है ।

भारतीजी की कविताएँ नव प्रतीकबंधों, बिम्बों तथा नवीन उपमेयोपमानों से संवलित हैं । उनमें अर्थ की अपार क्षमता सन्निहित है । इनका अभिव्यक्ति-पक्ष अत्यधिक सशक्त है । इनकी रचना का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

''अगर मैंने किसी के ओठ के पाटल कभी चूमे,
अगर मैंने किसी के नैन के बादल कभी चूमे,
महज इससे किसी का प्यार मुझको पाप कैसे हो ?
महज इससे किसी का स्वर्ग मुझ पर शाप कैसे हो ! ''

28.12.8. गिरिजाकुमार माथुर

इनकी प्रारंभिक रचनाओं पर छायावादी रोमांस का गहरा प्रभाव था, किंतु बाद में नई कविता के प्रभाव के फलस्वरूप इनकी कविताओं में निराशा, असफलता,

विषाद और रूग्णता की छाप अंकित है । इनकी कविता में इस नए मोड़ का कारण अँग्रेजी साहित्य का गहन अध्ययन है । इनकी कविता किसी वाद के बंधन को स्वीकार नहीं करती, अतः वह उनेक धाराओं से जुड़ती और टूटती रही है । इनके काव्य-ग्रंथों में 'मंजीर', 'नाश और निर्माण', 'धूप के धान', 'शिलापंख चमकीले', 'छाया मत छूना', 'भतीरी नदी की यात्रा', 'साक्षी रहे वर्तमान', 'कल्पतरू' आदि उल्लेखनीय हैं । इनमें रोमांस, सौंदर्य-लिप्सा, ऐन्द्रीयता एवं विलासिता के साथ-साथ यथार्थ के अन्य स्तरों की भी अभिव्यक्ति हुई है । इनकी कविता का एक अंश प्रस्तुत है -

''कुहरा भरा भोर जाड़ो का,
पर वह मजबूरी से कँपता उठ आया है,
दोनो बाँहें कसे छाती पर,
पीले से गालों पर है कुछ शेव बढ़ी-सी
मसली हुई कमीज के कफ में
रफू किया हुआ उसका स्वेटर
तीन सर्दियाँ देख चुका है ।''

28.12.9. भारतभूषण अग्रवाल

इनकी अनेक काव्य-कृतियाँ प्रकाशित हैं ; यथा - 'छवि के बंधन', 'जागते रहो', 'मुक्ति-मार्ग', 'ओ अप्रस्तुत मन', 'कागज के फूल' तथा 'एक उठा हुआ हाथ' । कविता के विषय में भारतभूषण का लक्ष्य सर्वथा उदात्त रहा है । इनकी कविताओं में मन की सच्ची छटपटाहट तथा आदर्श की उच्चता सर्वत्र दिखाई देती है । इन्होंने अपनी रचनाओं में मनुष्य की क्षुद्रता, दुर्बलता और तुच्छता पर तीखा व्यंग्य किया है । इन्होंने केवल फैशन के लिए पाश्चात्य काव्य एवं दर्शन की दूषित प्रवृत्तियों से अपने काव्य को मंडित या खंडित करने का प्रयास नहीं किया है । इनकी कविता का एक अंश प्रस्तुत है -

''हँसी फूल में नहीं,
गँध बौर में नहीं,
गीत कंठ में नहीं,
हँसी, गंध, गीत-सब मुक्ति में है ।
मुक्ति ही सौंदर्य का अंतिम प्रमाण है ।''

28.12.10. दुष्यंत कुमार

इनका लेखन सहज और स्वाभाविक था । इन्होंने अपनी कविताओं में जीवन-चेतना को छोटे-छोटे खंडों में उभारने की चेष्टा की है । इनके काव्य-संग्रहों - 'सूर्य का स्वागत', 'आवाजों के घेरे', 'साये में धूप' और 'जलते हुए वन का बसंत' - में उपर्युक्त प्रक्रिया दिखलाई देती है ।

हिन्दी कविता में गीत और गजल लिखने में दुष्यंत कुमार का कोई सानी नहीं है । उन्होंने कविता के क्षेत्र में कई नए प्रयोग किए हैं । किंतु, उनकी विशिष्ट देन है - हिंदी गजल । अपनी गजलों के बारे में उन्हांने लिखा है : ''मैं स्वीकार करता हूँ कि गजल को किसी भूमिका की जरूरत नहीं होती - मैं प्रतिबद्ध कवि हूँ । यह प्रतिबद्धता किसी पार्टी से नहीं, आज के मनुष्य से है और मैं जिस आदमी के लिए लिखता हूँ, यह भी चाहता हूँ कि वह आदमी उसे पढ़े और समझे ।'' उनमें कल्पना और अनुभूति प्रचुर मात्रा में है । उनकी वाणी में शक्ति और शैली में नवीनता है । उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

''हो गई है पीर पर्वत-सी, पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए ।
आज यह दीवार, परदों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए ।''

28.12.11. रघुवीर सहाय

ये आज्ञेयजी द्वारा संपादित 'दूसरा सप्तक' के प्रमुख कवि हैं । इनकी

प्रसिद्ध रचनाएँ हैं - 'सीढ़ियों पर धूप में', 'आत्महत्या के विरूद्ध', 'हँसो-हँसो और जल्दी हँसो' और 'लोग भूल गए हैं' । अपनी कविताओं में ये रोजमर्रा के प्रसंगों को उठाकर अपनी विशिष्ट काव्यशैली में उन्हें प्रभावशाली एवं प्रासंगिक बनाते हैं । इसी शैली के कारण इनकी अपनी अलग पहचान है । एक साधारण-सी घटना, एक छोटे-से प्रसंग को ये इस प्रकार अपनी कविता में गुंफित करते हैं कि पाठक के लिए वह विश्वसनीय और प्रामाणिक सत्य के रूप में सामने आता है । इनकी सरल, साफ-सुथरी और अत्यंत सधी हुई भाषा कविता के सर्वथा अनुकूल है । ये निश्चय ही आधुनिक काव्य-भाषा के मुहावरे को पकड़नेवाले सशक्त कवि हैं । इनकी कविता का एक अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

''बीस बरस बीत गए
लालसा मनुष्य की तिल-तिल कर मिट गई
अब नहीं हो सकता कोई लेखक महान
पहले तो बाम्हन होंगे, फिर ठाकुर होंगे
फिर बारी आएगी चमारों की
तब तक चमार कायस्थ बन गए होंगे ?''

28.12.12. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

समकालीन सत्य और यथार्थ को जो नए कवि सशक्त हाथों से पकड सकें, जो सच्चे अर्थों में समकालीन जीवन से संपृक्त हैं, उनमें सर्वेश्वरजी का विशेष स्थान है । उनका काव्य-क्षेत्र और व्यक्तित्व अत्यंत व्यापक है । उनमें लोकगीत की मस्तीभरी धुन पर सहज प्रेम के गीत गाने की जितनी सामर्थ्य है, उतनी ही संत्रास और संक्रांति की उलझी हुई संवेदना को व्यक्त करने की क्षमता भी ; विरह की गहन व्यथा को अद्‌भुत संयम के साथ कविता में उतारने की जितनी क्षमता है, उतनी ही युगीन विषमताओं पर चुभते हुए व्यंग्य करने की दक्षता है ; उनमें जितनी अनास्था और पराजय है उससे कहीं अधिक आस्था और विजय का विश्वास है । वे प्रकृति

को खिलवाड़ की मनःस्थिति में भी चित्रित कर सकते हैं और गहनतम अनुभूतियों के रंग में रँगकर भी । जीवन में हर कहीं रम लेने की और कहीं से कविता बोलने की सर्वेश्वरजी में अजीब की ताकत है । उनके काव्य में एक सफल नए कवि की प्रायः सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं । उन्होंने प्रकृति एवं नारी की रागात्मकता में डूबकर कविताओं की रचना की है किंतु उनमें भावप्रवणता के स्थान पर बौद्धिक संयम अधिक है । उनमें सपाटबयानी तथा नवीन बिम्ब-विसर्जन की अद्‌भुत क्षमता है । उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं - 'काठ की घंटियाँ', 'बाँस का पुल', 'एक सूनी नाव', 'गर्म हवाएँ', 'कुआनो नदी', 'जंगल का दर्द', 'घूँटियों पर टँगे लोग' आदि ।

उनकी कविता का एक अंश प्रस्तुत है -

''शक्ति अगर सीमत है
तो हर चीज अशक्त भी है,
भुजाएँ अगर छोटी हैं
तो सागर भी सिमटा हुआ है,
सामर्थ्य केवल इच्छा का दूसरा नाम है,
जीवन और मृत्यु के बीच जो भूमि है
वह नियति की नहीं मेरी है ।''

28.12.13. धूमिल

आज की नई कविता के समर्थ और सफल कवियों में सुदामा पांडेय 'धूमिल' का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है । 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे' और 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' इनके तीन काव्य-संग्रह प्रसिद्ध हैं । 'संसद से सड़क तक' विशिष्ट सठोत्तरी काव्य-कृति है । इसमें घुमा-फिराकर वर्तमान लोकतंत्र की व्यवस्था पर गहरा व्यंग्य किया गया है । धूमिल एक बेहतर लोकतंत्र की तलाश करते हैं जो वस्तुतः लोक के लिए हो, केवल कुछ मुट्‌ठीभर अवसरवादियों और धन-पशुओं के लिए न हो । इनकी रचनाओं में जीवन की तल्खी तथा सामाजिक और

राजनीतिक व्यवस्था पर गहरे तीखे व्यंग्य, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, वचनवक्रता, सपाटबयानी आदि विशेषताएँ लक्षित होती हैं । 'कुत्ता' शीर्षक कविता में चापलूसी पर उनका तीखा व्यंग्य दर्शनीय है -

''मगर मत भूलो कि इन सबसे बड़ी चीज
वह बेशर्मी है
जो अंत में
तुम्हें भी उस रास्ते पर लाती है
जहाँ भूख उस बहशी को
पालतू बनाती है ।''

गाँव शीर्षक कविता का एक कारूणिक चित्र -

''इस उदास गुमशुदा जगह में
जो सफेद है, मृत्युग्रस्त है
जो छाया है, सिर्फ रात है
जीवित है वह जो बूढ़ा है या अधेड़ है
और हरा है हरा यहाँ पर सिर्फ पेड़ है ।
चेहरा-चेहरा डर लटका है
घर-बाहर अवसाद है
लगता है यह गाँव नरक का
भोजपुरी अनुवाद है ।''

28.13. समाहार

व्यक्तिवादी और समाजवादी दोनों प्रकार के चिंतन से कविता की काव्यानुभूति को निर्मित किया गया । द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की विड़म्बना, घुटन और विसंगति को नई कविता में देखा जा सकता है । अस्तित्ववाद की धीमी लहर को भी नई कविता में रेखांकित किया जा सकता है । समस्त सीमाओं के बावजूद नई कविता ने अनुभूति की ईमानदारी को प्रामाणिक रूप से रचने का संकल्प नहीं त्यागा । शिल्प के धरातल पर जितने प्रकार के प्रयोग नई कविता में किये गये हैं, शायद ही किसी साहित्यिक आंदोलन में हुए होंगे । 1960 के आसपास इस नई

कविता-काव्यधारा मंद पड़ गयी और नवीन रचनाशीलता का आविर्भाव हुआ और अपनी अलग पहचान बनाने लगी । जन-जन की व्यथा-कथा का इसमें सच्चा इतिहास है । कविता में ठोस जीवनानुभूतियों को अभिव्यक्त करने में इस धारा के कवि सफल रहे । नये जीवन जगत का यथार्थ कम से कम शब्दों में जीवन-लय भरकर उभर आया है जो हमारे अत्यंत निकट है ।

28.14. बोध प्रश्न

1. नई कविता का परिचय देते हुए उसकी प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए ।
2. साठोत्तरी हिंदी कविता का विवेचन कीजिए ।
3. अकविता की प्रवृत्तियों पर लेख लिखिए ।
4. जनवादी कविता का परिचय दीजिए ।
5. सहज कविता का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।
6. समकालीन कविता का स्वरूप स्पष्ट कीजिए ।
7. हास्य-व्यंग्य प्रधान कविता पर निबंध लिखिए ।
8. नवगीत या नया गीत का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।
9. इस इकाई में चर्चित प्रमुख कवियों की साहित्यिक उपलब्धियों पर विचार कीजिए ।

NOTES

NOTES

NOTES

NOTES

इकाई उनतीस : आधुनिक काल (गद्य)
हिन्दी गद्य-साहित्य का विकास

इकाई की रूपरेखा

29.0. उद्देश्य

29.1. प्रस्तावना

29.2. हिन्दी-गद्य का विकास

29.2 भादिकाल

29.2.2. आरम्भिक काल

29.2.3. प्रयोग काल

29.2.4. निर्माण काल

29.2.5. विकास काल

29.2.6. विस्तार काल

29.3. हिन्दी-उपन्यास साहित्य

29.3.1. प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास-साहित्य

29.3.2. प्रेमचन्द और समसामयिक उपन्यासकार

29.3.3. प्रेमचन्दोत्तर युग

29.3.4. साठोत्तरी युग

29.4. हिन्दी-कहानी साहित्य

29.4.1. भारतेंदु-युग

29.4.2. प्रसाद-युग

29.4.3. प्रेमचंद-युग

29.4.4. प्रेमचंदोत्तर युग

29.4.5. स्वातंत्र्योत्तर कहानी साहित्य

29.5. हिन्दी-निबंध साहित्य

29.5.1. भारतेंदु-युग

29.5.2. द्विवेदी-युग

29.5.3. शुक्ल-युग

29.5.4. शुक्लोत्तर युग

29.5.5. स्वातंत्र्योत्तर निबंध साहित्य

29.6. हिन्दी-आलोचना साहित्य

29.6.1. परिभाषा

29.6.2. आलोचना के प्रकार

29.6.3. हिन्दी-आलोचना का विकास

29.7. समाहार

29.8. बोधप्रश्न

29.0. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आधुनिक काल के हिन्दी-गद्य साहित्य के विकास की विशद चर्चा करने के उपरांत हिन्दी के उपन्यास,कहानी, निबंध तथा आलोचना-साहित्य का परचिय दिया जा रहा है । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

1. हिन्दी गद्य-साहित्य के विकास का संपूर्ण परिचय प्राप्त करेंगे ;
2. हिन्दी उपन्यास-साहित्य के विकास में विभिन्न साहित्यकारों के योगदान को समझ पायेंगे ;
3. हिन्दी कहानी-साहित्य में विभिन्न युगों की देन से परिचित होंगे ;
4. हिदी-निबंध-साहित्य के विकास-क्रम की जानकारी प्राप्त करेंगे ;
5. हिन्दी-आलोचना साहित्य की विकास-यात्रा से अवगत होंगे ;
6. हिन्द-गद्य साहित्य के विस्तृत क्षेत्र में महत्वपूर्ण रचनाकारों की समग्र कृतियों से परिचित होंगे ।

29.1. प्रस्तावना

आधुनिक काल में हिन्दी-साहित्य की सभी दिशाओं में स्वाभाविक ही परिवर्तन हुए और हिन्दी-साहित्य की विविधमुखी उन्नति भी हुई तथा गद्य का विकास हो जाने से निबंध, उपन्यास, कहानी, आलोचना, नाटक, एकांकी तथा अन्य साहित्य-रूपों का प्रचलन भी हुआ । पद्य-शैली में जिस प्रकार से विविधमुखी परिवर्तन हुआ था, उसी प्रकार गद्य-शैली में अनेक विधाएँ विकसित हुईं । प्रस्तुत इकाई में उपन्यास, कहानी, निबंध तथा आलोचना आदि विधाओं की चर्चा की जा रही है ।

29.2. हिन्दी-गद्य का विकास

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो आधुनिक हिन्दी-साहित्य की सर्वाधिक

महत्वपूर्ण घटना गद्य का आविष्कार है और गद्य का विकास होने पर ही साहित्य की बहुमुखी उन्नति भी सम्भव हो सकी । यद्यपि हिन्दी-गद्य का विधिवत् और क्रमिक विकास सं 1900 के बाद से प्राप्त होता है, फिर भी हिन्दी-गद्य का प्रारंभ 1800 ई. से माना जाता है और गद्य के विकास का काल-विभाजन इस प्रकार किया जाता है -

(अ)	आदिकाल	-	14वीं सदी से 1800 ई. तक
(आ)	आरंभिक काल	-	1800 ई. से 1873 ई. तक
(इ)	प्रयोगकाल	-	1873 ई. से 1900 ई. तक
(ई)	निर्माणकाल	-	1900 ई. से 1936 ई. तक
(उ)	विस्तारकाल	-	1936 ई. से अबतक ।

29.2.1. आदिकाल

वस्तुतः हिन्दी-गद्य साहित्य के आदिकाल में हिन्दी-गद्य के प्राचीन रूप ही यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं । राजस्थान व दक्षिण भारत में तो अवश्य हिन्दी-गद्य के प्रारंभिक रूप की झलक मिलती है । उत्तर भारत की भाषा में ब्रजभाषा गद्य के ही उदाहरण अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं । कहा जाता है कि मैथिली-साहित्य में गद्य की पार्याप्त रचनाएँ हुई हैं और मैथिली के प्राप्त ग्रंथों में ज्योतिरीश्वर का ''वर्णरत्नाकर'' सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है । इसके उपरांत राजस्थानी-गद्य, ब्रजभाषा-गद्य और खड़ीबोली का प्रारंभिक गद्य-साहित्य आदि ही विचारणीय सामग्री है । राजस्थानी-गद्य के प्रारंभिक विकास में जैन विद्वानों का विशेष योगदान है । यह गद्य-रूप दान-पत्रों, पट्टे, परवानों, सनदों, वार्ताओं और टीकाओं आदि के रूप में उपलब्ध होता है । उस पर संस्कृत अपभ्रंश की परंपरा का प्रभाव स्वाभाविक रूप से पड़ा है । ब्रजभाषा-गद्य का प्राचीनतम रूप रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार सन् 1457 तक का ही उपलब्ध होता है । 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वल्लभ-संप्रदाय के रचनाकारों ने अपने संप्रदाय के वैष्णवों व महाप्रभुओं की वार्ता या

जीवन-चरित्र लिखते समय ब्रजभाषा के गद्य का सर्वप्रथम समीचीन रूप प्रस्तुत किया । दक्षिण भारत के कुछ रचनाकारों ने हिन्दी-गद्य के निर्माण में अपना सहयोग दिया है और गुलबर्गा के ख्वाजा बन्देनवाज, मुहम्मद हुसेनी तथा मुल्ला वजहीं आदि उल्लेखनीय हैं । यद्यपि दक्खिनी हिन्दी में जो साहित्य मिलता है, वह विशेष रूप से धर्म-प्रचार के लिए लिखी गयी मुस्लिम धर्म-प्रचार संबंधी फारसी ग्रंथों के अनुवाद रूप में है ; भाषा की दृष्टि से तो इन ग्रंथों को उल्लेखनीय मानना ही होगा । आधुनिक काल में जिस भाषा में हिन्दी-गद्य लिखा जा रहा है, वह खड़ीबोली गद्य ही है । मुसलमानों के शासन-काल में खड़ीबोली का उपयोग होता था और वह शिष्ट समाज की भाषा थी ; उसका उपयोग जनसाधारण के लिए भी होता था । आचार्य शुक्ल ने ''योगवाशिष्ठ'' (सन् 1741) को ही परिमार्जित खड़ीबोली गद्य की प्रथम पुस्तक कहा है । विशुद्ध खड़ीबोली के प्रमुख लेखक मुंशी सदासुखलाल हैं । उनकी भाषा-शैली में रामप्रसाद निरंजनी, दौलत राम, सीतलदास आदि गद्य लेखकों की भाषा-शैली का आदर्श मिलता है । ''सुरासुरनिर्णय'' लेख इसका प्रमाण है ।

29.2.2. आरंभिक काल

इस काल के प्रारंभ में ही इंशा अल्ला खाँ की ''रानी केतकी की कहानी' अंग्रेजी प्रभाव से सर्वथा दूर लखनऊ में रची गयी और इसके माध्यम से सर्वप्रथम खड़ीबोली-गद्य साहित्य में लौकिक श्रृंगारमय परंपरा का सूत्रपात हुआ । इसी परंपरा में 19 वीं शताब्दी के अंत में तिलस्मी-ऐय्यारी उपन्यासों की सृष्टि हुई । न केवल शैली की दृष्टि से, अपितु भावों के विचार से भी ''रानी केतकी की कहानी'' उत्कृष्ट, प्रौढ़ और परिमार्जित खड़ीबोली गद्य का सुंदर उदाहरण है । इसी काल में हिन्दी-गद्य के विकास में फोर्ट विलियम कालेज ने भी अपना योग दिया । इस

कालेज में डॉ.जान बौर्थविक गिलक्राइस्ट हिन्दुस्तानी के अध्यापक नियुक्त हुए और उन्होंने फारसी शैली, हिन्दुस्तानी शैली तथा हिन्दवी शैली नामक तीन प्रकार की शैलियाँ मानते हुए अरबी-फारसी मिश्रित 'हिन्दुस्तनी शैली' के प्रति अधिक अनुराग प्रकट किया और हिन्दवी शैली को गंवारू माना । इसी कालेज में नियुक्त लल्लूलाल और सदल मिश्र ने खड़ीबोली-गद्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया । लल्लूलाल ने ब्रजभाषा के प्रथम व्याकरण के अतिरिक्त ''प्रेमसागर'', ''सिंहासन बत्तीसी'', ''सभाविलास'' आदि कई पुस्तकें लिखीं, पर उन सबमें ''प्रेमसागर'' का हिन्दी-गद्य के विकास में ऐतिहासिक महत्व है । इसी प्रकार सदल मिश्र की ''नासिकेतोपाख्यान'' कृति भी गद्य के विकास में विशेष उल्लेखनीय है । इनके अतिरिक्त गंगाप्रसाद शुक्ल, इन्द्रेश्वर, मधुसूदन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दीनबंधु, खालीराम आदि विद्वानों ने भी खड़ीबोली गद्य के विकास में सहयोग दिया है । साथ ही, इस काल में ईसाई धर्म-प्रचारकों ने भी खड़ीबोली गद्य के विकास में अपना योगदान किया । ईसाई धर्म-प्रचारकों के विरोध में ब्रह्म समाज और आर्य समाज आदि जिन समाज-सुधार आंदोलनों का जन्म हुआ, उन्होंने भारतीय संस्कृति के मूल रूप की रक्षा करते हुए हिन्दी-गद्य को भी प्रोत्साहन दिया । खड़ीबोली-गद्य के उत्थान में समाचार-पत्रों का भी योग रहा है और हिन्दी का सर्वप्रथम समाचार पत्र 'उदन्त मार्ताण्ड' 30 मई सन् 1826 को कलकत्ता से प्रकाशित हुआ । इसके पश्चात् 'बंगदूत', 'प्रजामित्र', 'बनारस अखबार' प्रकाशित हुए । राजा लक्ष्मण सिंह ने अरबी-फारसी मिश्रित भाषा-शैली से विहीन एक विशुद्ध भाषा का निर्माण किया ; भाषा और लिपि दोनों दृष्टियों से हिंदी को उर्दू से अलग किया । हिन्द-गद्य के उन्नायकों में उनका स्थान है । बाबू नवीनचन्द्र राय तथा श्रद्धाराम फुल्लौरी ने भी योग दिया ।

29.2.3. प्रयोगकाल

हिन्दी-गद्य के निर्माण में सन् 1876 से प्रकाशित होने वाली भारतेंदु की 'हरिश्चन्द्र मैगजीन'' एक नूतन दिशा का सूत्रपात करती है । भारतेंदु अपनी इस पत्रिका द्वारा साहित्य के प्रत्येक रूप का प्रचलन करना चाहते थे । वे ही पहले लेखक हैं, जिन्होंने जनता का ध्यान इन साहित्य रूपों - नाटक, उपन्यास, आलोचना आदि गद्य रूपों - की ओर आकृष्ट किया । हिन्दी-साहित्य के उनके इस नूतन युग के गद्य लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीनिवासदास, कार्तिकाप्रसाद खत्री, ठाकुर जगमोहन सिंह, अंबिकादत्त व्यास, दुर्गाप्रसाद मिश्र आदि मुख्य थे । भारतेंदु के पश्चात् हिंदी गद्य को स्थिरता और शक्ति प्रदान करने में बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ने अपना विशेष योग दिया । बदरी नारायण चौधरी 'प्रमघन' ने तो एक नूतन गद्य-शैली का रूप निर्माण कर गद्य की शक्ति विशेष रूप से बढ़ाई । इसी प्रयोग काल में गोविंद नारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त ने अपनी विभिन्न गद्य-शैलियों के प्रयोग द्वारा हिन्दी-साहित्य को समृद्ध किया । सन् 1893 में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना हुई, जिसने हिन्दी-साहित्य के विकास का एक नया अध्याय प्रारंभ किया और सन् 1897 में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन भी अत्यंत महत्वपूर्ण घटना है ।

29.2.4. निर्माण काल

यह काल हिन्दी-गद्य के विकास के लिए महत्व का है । काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने सन् 1900 से प्राचीन ग्रंथों की खोज का कार्य प्रारंभ किया और सन् 1905 के बाद खोज के कार्य की रिपोर्ट त्रैवार्षिक प्रकाशित होने लगी । साथ ही शब्द कोश व व्याकरण के निर्माण की ओर भी ध्यान दिया गया । प्रयाग से 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का प्रकाशन तो निःसन्देह एक युगान्तकारी घटना है

क्योंकि इस पत्रिका से अनेक लेखकों और कवियों को साहित्य-निर्माण की प्रेरणा मिली । वस्तुतः द्विवेदीजी के संपादन काल से ही इस पत्रिका ने हिन्दी-साहित्य के विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योग दिया । द्विवेदीजी ने भाषा-शैली को परिष्कृत कर उसे सजीव तथा विशुद्ध रूप दिया । उन्होंने अनेक नवीन लेखकों का पथ-प्रदर्शन किया और उन्हें हिन्दी-गद्य के विविध साहित्य रूपों को विकसित करने की ओर प्रवृत्त किया । गद्य की निर्माण-कला में चतुरसेन शास्त्री, जयशंकर 'प्रसाद', चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', प्रेमचन्द आदि की कहानियाँ प्रकाशित हुईं और मिश्रबंधु, श्यामसुंदरदास, रामचन्द्र शुक्ल, पद्मसिंह शर्मा एवं कृष्णबिहारी मिश्र ने आलोचना और निबंध-साहित्य के विकास में योग दिया । उपन्यास और नाटक की दृष्टि से विचार करने पर हम देखते हैं कि इस काल में बंगाल से अनेक श्रेष्ट कृतियों का अनुवाद हिन्दी में हुआ और कुछ मौलिक कृतियाँ भी लिखी गयीं । साथ ही, माधवप्रसाद मिश्र, अध्यापक पूर्णसिंह, देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, हरिऔध आदि लेखकों की गद्य रचनाएँ भी हिन्दी-गद्य के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में उत्तरोत्तर वृद्धि होने से हिन्दी-गद्य लेखकों की संख्या बढ़ने लगी और पंजाब, महाराष्ट्र, बंगाल व गुजरात में भी हिन्दी में रचनाएँ लिखी जाने लगीं । इस प्रकार निर्माण काल में हिन्दी गद्य का रूप स्थिर हुआ ।

29.2.5. विकास काल

वस्तुतः हिन्दी गद्य-साहित्य का विविधमुखी विकास इसी काल में संभव हो सका । आचार्य द्विवेदीजी द्वारा भाषा को जो व्यावहारिक तथा सांस्कृतिक रूप मिला, उसका विकास इस काल के लेखकों द्वारा ही हुआ क्योंकि भाषा की विभिन्न शैलियों के निर्माण हेतु भाषा का यह सुदृढ़ रूप अत्यंत उपयुक्त था । इसी काल में

कलकत्ता, काशी, इलाहाबाद आदि विश्वविद्यालयों में एम.ए के पाठ्यक्रम में हिन्दी को स्थान मिला । साथ ही, 'माधुरी', 'चाँद', 'समालोचक', 'कल्याण', 'विशाल भारत', 'सुधा', 'हंस' आदि पत्रिकाओं और 'कर्मवीर', 'हिन्दू पंच', 'स्वतंत्र भारत', 'जागरण', 'स्वराज्य', 'नवयुग' आदि समाचार पत्रों के प्रकाशन से नवीन लेखकों तथा हिन्दी-पाठकों की संख्या भी बढ़ने लगी । इस काल के गद्य-निर्माताओं में श्यामसुंदरदास, रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, प्रेमचन्द, रामवृक्ष बेनीपुरी, राधाकृष्णदास व वियोगी हरि आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । इस काल में भाषा की अनेक शैलियों का भी प्रादुर्भाव हुआ । उपन्यास, नाटक, कहानी, निबंध, आलोचना आदि की दृष्टि से अनेक श्रेष्ठ कृतियों का निर्माण हुआ । गद्य की अन्य अनेक विधाओं का आविर्भाव हुआ । इलाचंद्र जोशी, जैनेन्द्र आदि की मनोवैज्ञानिक कृतियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं । प्रसाद, प्रेमी आदि नाटककारों की रचनाओं में राष्ट्रीय भावनाओं का चित्रण और रामकुमार वर्मा, सेठ गोविंददास की नाट्य कृतियाँ एक नये युग के आरंभ का संकेत है ।

29.2.6. विस्तार काल

वस्तुतः आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, डॉ.श्यामसुंदरदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द व प्रसाद आदि साहित्यकारों से आलोचना, निबंध, नाटक, उपन्यास व कहानी को स्वतंत्र रूप मिलने पर हिन्दी-गद्य साहित्य के निर्माण में एक प्रगतिशील परंपरा का सूत्रपात हुआ । सन् 1936 के बाद हिन्दी-गद्य लेखकों के एक नवीन वर्ग का उदय हुआ, जिसमें वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्र, डॉ.हजारीप्रसाद द्विवेदी, निराला, भगवतीचरण वर्मा, नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ.रामकुमार वर्मा, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, डॉ.गुलाबराय, राहुल सांकृत्यायन, महादेवी वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, माखनलाल चतुर्वेदी, सुमित्रानंदन पंत आदि उल्लेखनीय हैं । इनकी कृतियों द्वारा

हिन्दी भाषा और साहित्य को वैभवशाली रूप प्राप्त हुआ है । स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी को सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ । हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत हुई और स्वाभाविक रूप में जैसे-जैसे हिन्दी-गद्य के विविध साहित्यिक रूपों का विकास होता गया, हिन्दी-गद्य भी समृद्ध होता रहा है ।

29.3. हिन्दी उपन्यास-साहित्य

हिन्दी का उपन्यास-साहित्य आधुनिक युग की देन है । हिन्दी उपन्यासों का आधुनिक स्वरूप यूरोपीय साहित्य से प्रभावित है, जिसका सूत्रपात भारतेंदु युग में संपन्न हुआ । संस्कृत-साहित्य में 'कादम्बरी', 'दशकुमारचरित', 'कथासरित्सागर' आदि रचनाएँ उपन्यासों के स्वरूप को विकसित करने में सफल हुईं । 'रानी केतकी की कहानी' और 'राजा भोज का सपना' आदि को भी आधुनिक कथा की पूर्वप्रेरणा मान सकते हैं । हिन्दी का प्रारंभिक उपन्यास-साहित्य बँगला तथा अंग्रेजी से अधिक प्रभावित है । हिन्दी-उपन्यासों की विकास-यात्रा का अध्ययन करने के लिए उसे चार भागों में विभाजित किया जाता है - प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास-साहित्य, प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास, प्रेमचन्दोत्तर युग तथा साठोत्तरी युग ।

29.3.1. प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास-साहित्य

जिस प्रकार भारतेंदु युग में हिन्दी-साहित्य के विभिन्न अंगों का विकास हुआ, उसी प्रकार उपन्यास-साहित्य का भी विकास हुआ । भारतेंदु ने 'पूर्णप्रकाश और चन्द्रप्रभा' नामक एक उपन्यास का अनुवाद किया और "हमीरहठ' नामक मौलिक उपन्यास भी लिखना प्रारंभ किया पर वह पूरा नहीं हो पाया । सन् 1882 ई. में हिन्दी का पहला उपन्यास (मौलिक) 'परीक्षा गुरू', प्रकाश में आया, जिसके लेखक हैं - लाला श्रीनिवास दास । इनको ही हिन्दी का पहला उपन्यासकार माना जाता है, लेकिन कुछ लोगों का विचार है कि देवकीनन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता' के पहले

हिन्दी में उपन्यास के साहित्य-रूप की प्रतिष्ठा नहीं हो सकी । वस्तुतः लाला श्रीनिवासदास, खत्री के पूर्ववर्ती उपन्यासकार हैं और किशोरीलाल गोस्वामी ने भी खत्री के पूर्व उपन्यास-जगत में प्रवेश किया था । भारतेंदु युग के कई अन्य लेखकों ने भी उपन्यास-लेखन की ओर ध्यान दिया, जिनमें रत्नचन्द्र प्लीडर का 'नूतन चरित्र', बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान', राधाचरण गोस्वामी का 'विधवा विपत्ति', बालमुकुन्द गुप्त की 'कामिनी' आदि उल्लेखनीय हैं । इस युग में ऐतिहासिक, सामाजिक, प्रणय-संबंधी, तिलस्मी और ऐयारी से संबद्ध उपन्यासों की रचना हुई । किशोरीलाल गोस्वामी, ब्रजनंदन सहाय, कृष्णप्रकाश सिंह अखौरी आदि ने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की । राधाकृष्णदास ने 'निःसहाय हिन्दू', किशोरीलाल गोस्वामी ने 'लवंगलता' और 'कुसुमकुमारी' आदि सामाजिक उपन्यासों की रचना की । प्रेमाख्यानक उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी, जगन्नाथ मिश्र और काशी प्रसाद आदि उल्लेखनीय हैं । इस काल के मौलिक उपन्यासकारों में देवकीनंदन खत्री, गोपाल राम गहमरी तथा किशोरीलाल गोस्वामी के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं । इस युग में अनुवाद कार्य भी अत्यधिक प्रशंसनीय रहा । भारतेंदु, प्रताप नारायण मिश्र तथा राधाचरण गोस्वामी ने हिंदीतर उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद किया । हरिऔधजी के 'ठेठ हिंदी का ठाट' और 'अधखिला फूल', लज्जाराम मेहता का 'आदर्श हिंदू' आदि मौलिक उपन्यास भी रचे गए । प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यास-साहित्य को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने आरंभिक संक्रांतिकाल कहा है । वाजपेयीजी का कथन है कि - ''इस नव-निर्माण के बीच कभी कोई उपन्यासकार किसी पौराणिक या सामाजिक कथानक का आधार लेकर कोई उपदेशात्मक कृति प्रस्तुत कर देता था और कभी कोई भावुकतापूर्ण रचना सामने आ जाती थी, परंतु सामाजिक प्रगति और जीवन की वास्तविकता में बैठकर उसके यथार्थ और प्रभावशाली चित्र हमारे आरंभिक उपन्यासकार अधिक मात्रा में

नहीं दे सके । अब तक रीति के साहित्यिक संस्कार बने हुए थे और नवीन सामाजिक चेतना का उदय नहीं हुआ था । हिन्दी उपन्यासों के नये युग का निर्माण करने में अंग्रेजी और बंगला आदि से किये गये अनुवादों का भी महत्व कुछ कम नहीं है । परंतु ध्यान देने की बात यह है कि उन दिनों अंग्रेजी के साहित्यिक, जासूसी और प्रेम-चर्चा प्रधान उपन्यासों का जितना अनुकरण हुआ, उतना सांस्कृतिक और सामाजिक उपन्यासों का नहीं । ऐसा प्रतीत होता है कि तब तक लोक रूचि का परिमार्जन हिन्दी में नहीं हो पाया था । अच्छी कृतियों का बाजार नहीं था । यह भी संभव है कि अंग्रेजी के श्रेष्ठतम उपन्यास तब तक इस देश में प्रचलित ही न हो पाये हों । अतः 'लंदन-रहस्य' और 'लैला' जैसे साहित्यिक और प्रेम-चर्चा प्रधान उपन्यास ही अनुवाद के योग्य समझे गये । 'टाम काका की कुटिया' के रूप में एक अच्छे उपन्यास का अनुवाद अवश्य हुआ । बंगला से भी कुछ अच्छी कृतियाँ अनूदित होकर आयीं जिनमें स्वर्णलता, दुर्गेशनंदिनी, बंग विजेता, विरजा, दीप निर्वाण, युगलांगुरीय, कृष्णकांत का दान-पत्र आदि उल्लेखनीय हैं ।''

29.3.2. प्रेमचन्द और समसामयिक उपन्यासकार

वाजपेयीजी ने कहा है - ''उपन्यासों के इस निर्माण और अनुवाद के आरंभिक युग को पार करते ही हम हिन्दी उपन्यासों के उस नये युग में पहुँचते हैं, जिनका शिलान्यास प्रेमचन्दजी ने किया और जिसमें आकर हिन्दी-उपन्यास एक सुनिश्चित कला-स्वरूप को प्राप्त कर अपनी आत्मा को पहचान सका तथा अपने उद्देश्य से परिचित होकर उसकी पूर्ति में लग सका ।'' इस प्रकार निर्विवाद रूप से प्रेमचन्द को हिन्दी-उपन्यास साहित्य का निर्माता कहा जा सकता है । कुछ आलोचकों का कहना है कि ''प्रेमचन्द हिन्दी के युग-प्रवर्तक अमर कलाकार हैं । उनसे पूर्व हिन्दी उपन्यास सर्वथा अविकसित था । उसमें तिलिस्म ऐयारी और

जासूसी कथाओं की ही प्रधानता थी, किंतु प्रेमचन्दजी ने उपन्यास साहित्य को मानवीय जीवन के निकट ला दिया और उसमें तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का चित्रण किया । उनके उपन्यास तत्कालीन संघर्षमय जीवन और समाज के प्रतिबिंब हैं ।'' प्रेमचन्द एक सुधारक थे । उनकी सुधारवादी प्रवृत्ति उनके उपन्यासों में लक्षित होती है । उन्होंने अपनी रचनाओं में भारतीय परंपरा के अनुसार आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का चित्रण किया है । यद्यपि कहीं-कहीं उनकी रचनाओं में उनका उपदेशात्मक रूप प्रधान हो गया है, तथापि उन्होंने कलात्मकता की अपेक्षा नहीं की । 'सेवासदन' उनका सर्वप्रथम उपन्यास है । इसमें समाज के मध्य वर्ग की सामाजिक समस्याओं का अत्यंत चित्ताकर्षक वर्णन किया गया है । हमारे समाज और परिवार की कुरीतियों से उत्पन्न होने वाले भीषण दुष्परिणामीं का यह यथार्थ चित्र है । 'प्रेमाश्रम' में भारतीय ग्रामीण जीवन को चित्रित किया गया है । पुरानी सामंती और जमींदारी सभ्यता तथा किसानों का शोषण आदि का मार्मिक चित्रण किया गया है । 'रंगभूमि' में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, मजदूर, किसान, पूँजीपति आदि सभी वर्ग चित्रित हैं । 'कायाकल्प' में अलौकिक कथा का समावेश है । इसमें रियासतों के जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत है । 'प्रतिज्ञा', 'गबन' और 'निर्मला' छोटे उपन्यास हैं, जिनमें सामाजिक समस्याओं का चित्रण है । 'गोदान' प्रेमचन्द की अंतिम सर्वोत्कृष्ट कृति है । उन्होंने जीवन की कटुता को संपूर्णतः अनुभव कर उसे अपने इस अमर उपन्यास में चित्रित किया है ।

प्रेमचन्द के समसामयिक उपन्यासकारों में जयशंकर 'प्रसाद', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', चन्डीप्रसाद, हृदयेश, चतुरसेनशास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, पांडेय बेचनशर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन, जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, गोविंदवल्लभ पंत आदि की गणना की जाती है । लेकिन इनमें से कई लेखकों की

प्रतिभा प्रेमचन्दोत्तर काल में ही अधिक सशक्त होकर सामने आ सकी । प्रसाद की 'तितली' और 'कंकाल', उग्र के 'चन्द हसीनों के खतूत', 'बुधुआ की बेटी', 'दिल्ली का दलाल', चतुरसेन शास्त्री की 'हृदय की परख' और 'अमर अभिलाषा', कौशिक की 'भिखारिणी', 'माँ', वृन्दावनलाल वर्मा की 'गढ़कुंडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'मृगनयनी', भगवती चरण वर्मा की 'वह फिर नहीं आई', 'भूले बिसरे चित्र', गोविंदवल्लभ पंत की 'नूरजहाँ', 'अमिताभ', जैनेन्द्र की 'सुनीता', 'सुखदा', 'त्यागपत्र' आदि उल्लेखनीय औपन्यासिक कृतियाँ हैं । इनमें से कुछ प्रेमचन्दोत्तर युग में प्रकाशित हुईं और प्रसिद्धि पायीं । प्रेमचन्द के समसामयिक लेखक होते हुए भी प्रेमचन्दोत्तर काल में ही अधिक प्रसिद्ध हुए । निराला, राधिकारमण प्रसाद सिंह, श्रीनाथ सिंह, उषादेवी मित्र, प्रतापनारायण श्रीवास्तव आदि प्रेमचन्द युग के श्रेष्ठ उपन्यासकार हैं ।

29.3.3. प्रेमचन्दोत्तर युग

प्रेमचन्दोत्तर युग में उपन्यास-क्षेत्र में नवीन प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं । मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों का सर्जन इस युग की मूलभूत विशेषता है । इस युग के कुछ उपन्यासकारों ने अपने पूर्ववर्ती युग की कथा-परंपरा को भी विकसित किया है, जिनमें प्रेमचंदयुगीन औपन्यासिक तत्वों का प्राधान्य है । मनोविज्ञान को आधार बनाकर उपन्यास-रचना करनेवालों में जैनेंद्रकुमार का अपना विशिष्ट स्थान है । इनके द्वारा लिखित 'परख', 'कल्याणी', 'व्यतीत', 'विवर्त', 'जयवर्द्धन', 'त्यागपत्र' आदि उल्लेखनीय हैं । इन कृतियों में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से व्यक्ति के विशुद्ध वैयक्तिक अंतर्विरोधों के संघर्ष को ही चित्रित किया गया है । भगवतीचरण वर्मा ने रूढ़िवादी सिद्धांतों के विरूद्ध नवीन मूल्यों की स्थापना करने का प्रयत्न किया है । 'चित्रलेखा', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' 'आखिरी दाँव' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं । इलाचन्द्र

जोशी के सभी उपन्यासों में प्रायः मनोविश्लेषण को आधार बनाकर समस्या की जड़ को पहचानने की चेष्टा की गयी है । इनके 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'लज्जा', 'निर्वासित', 'मुक्तिपथ', 'जहाज का पंछी' आदि प्रसिद्ध हैं । प्रेमचन्दोत्तर युग में यशपाल के 'देशद्रोही', 'दादा कामरेड', 'दिव्या', 'मनुष्य के रूप', रांगेय राघव के 'कब तक पुकारू', 'मुर्दों का टीला', उपेन्द्रनाथ अश्क के उपन्यास 'गिरती दीवारें', 'गर्म राख', 'बड़ी-बड़ी आँखें', नागार्जुन के 'बलचनमा', 'रतिनाथ की चाची', अमृतलाल नागर के 'महाकाल', 'बूँद और समुद्र', राजेन्द्र यादव के 'उखड़े हुए लोग', 'मरूप्रदीप', 'नई इमारत', हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारु चन्द्रलेखा', अज्ञेय द्वारा रचित 'शेखरःएक जीवनी', 'नदी के द्वीप', धर्मवीर भारती के 'गुनाहों के देवता', 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', उदयशकर भट्ट के 'वह जो मैं ने देखा', 'सागर लहरें और मनुष्य', देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ का पहिया', फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल', 'परती परिकथा' आदि उपन्यास अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । इस प्रकार सामाजिक मनोविश्लेषणात्मक, प्रगतिशील, यथार्थवादी आँचलिक तथा बौद्धिकता के साथ राजनीतिक पृष्ठभूमि को उभारनेवाले उपन्यासों की रचना हुई । आंचलिक भावबोध को अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर मुखर करने का श्रेय अभिमन्यु अनत का है । यंत्रीकरण, दो महायुद्धों और अस्तित्ववादी चिंतन के फलस्वरूप जो आधुनिकता की स्थिति उत्पन्न हुई है, उसको लेकर भी उपन्यास लिखे गये हैं । मोहन राकेश के 'अंधेरे बंद कमरे', 'न आनेवाला कल', आधुनिकता से प्रभावित हैं । निर्मल वर्मा का 'वे दिन', श्रीकांत वर्मा कृत 'दूसरी बार', महेन्द्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स', कमलेश्वर का 'डाक बँगला', नरेश मेहता का 'यह पथ बंधु था', श्रीलाल शुक्ल का 'राग-दरबारी' आदि उपन्यास भी आधुनिकता के प्रवाह में लिखे गये । इनके अतिरिक्त शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, यज्ञ दत्त, कमल जोशी, लक्ष्मीनारायण लाल, अमृतराय आदि अत्यधिक प्रसिद्ध हैं ।

29.3.4. साठोत्तरी युग

1960 के बाद हिन्दी उपन्यासों में अनेक नई प्रवृत्तियों का आविर्भाव हुआ । राजनीतिक, सांस्कृतिक, समाज तथा व्यक्ति-चेतना से अनुप्राणित उपन्यासों का अपना महत्व है । बदीउज्जमा के 'एक चूहे की मौत' और 'छठा तंत्र', राही मासूम रजा का 'कटरा बी आरजू', डॉ.शशिभूषण सिंघल के 'जानी अनजानी राहें', 'अपने पराये', हृदयेश कृत 'सफेद घोड़ा, काला सवार', डॉ.मनमोन सहगल का 'बदलती करवटें' आदि उच्चकोटि के उपन्यास हैं, जिनमें शासनतंत्र के अत्याचारों, आधुनिक नेताओं की शोषण-प्रवृत्ति, भ्रष्टाचार, मिथ्याचार, आधुनिक लोकतंत्र की विद्रूपताओं आदि का चित्रण है । सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित उपन्यासों के वर्ग में उपन्यासकारों ने पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति के आकर्षण, भौतिकवादी जीवन-दर्शन, आधुनिकता के प्रभाव से मुक्त होकर अपने युग और समाज को एक स्वस्थ, संतुलित एवं उदात्त संदेश देने का प्रयत्न किया है । नरेन्द्र कोहली के चार उपन्यास हैं, जिनमें परंपरागत राम-कथा को नवीन शैली में आधुनिक युगानुरूप प्रस्तुत किया गया है । इनमें लेखक ने श्री राम के द्वारा अपने युग को नया-संदेश दिया है । वीरेंद्रकुमार जैन ने 'अनुत्तर योगी' में जैन धर्म के तीर्थंकर महावीर के चरित्र को आधुनिक भाव-बोध के साथ प्रस्तुत किया है । समाज-चेतना से युक्त उपन्यासों में श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी', रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ', जगदीशचन्द्र कृत 'धरती धन न अपना', 'मुट्ठीभर काँकर', आदि विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनमें स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् की परिस्थितियों का तथा ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण है । शैलेश मटियानी के 'छोटे-छोटे पक्षी', गिरिराज किशोर के 'इंद्र सुने', महीप सिंह के 'यह भी नहीं', अमृतराय के 'धुआँ' आदि में महानगरीय जीवन की विसंगतियों तथा विषमताओं का चित्रण है । हेमराज 'निर्मम' के 'मुझे भूल जाना', 'बसंत फिर आयेगा' आदि में दांपत्य, पारिवारिक तथा सामाजिक समस्याओं का

यथार्थ अंकन है । सामाजिक चेतना-युक्त अन्य उपन्यासों में सतीश जमाली का 'प्रतिबद्ध', काशीनाथ सिंह का 'अपना मोर्चा', रवींद्र कालिया का 'खुदा सही सलामत', गंगाप्रसाद विमल का 'मृगांतक', इंदु बाली का 'बाँसुरिया बज उठी', ममता कालिया का 'बेघर', मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी', शशिप्रभा शास्त्री का 'सीढ़ियाँ', मंजुल भगत का 'अनारो', प्रभा खेतान का 'अपने-अपने चेहरे' आदि उल्लेखनीय हैं । व्यक्ति-चेतना से संपृक्त रचनाओं में व्यक्ति की आशा-आकांक्षाओं, कुंठाओं, व्यक्ति के अहं व दर्प आदि का चित्रण हुआ है । नैतिक मूल्यों, आदर्शों, मान्यताओं को ठुकराते हुए भोगवाद, यौन संबंध, स्त्री-पुरूष के बदलते रिश्ते आदि का भी चित्रण है । निर्मल वर्मा के 'वे दिन', 'एक चिथड़ा सुख' आदि में पारिवारिक जीवन की निष्फलता, व्यक्ति की विवशता का अंकन आधुनिकता बोध के आधार पर किया गया है । महेंद्र भल्ला के 'एक पति के नाट्स', गिरिराज किशोर के 'यात्राएँ', कृष्ण सोबती के 'मित्रों मरजानी', उषा प्रियंवदा के 'रूकोगी नहीं राधिका', 'पचपन खंभे लाल दीवारें' आदि में काम संबंधों व यौनाचार का मुक्त चित्रण मिलता है । इस प्रकार हिन्दी औपन्यासिक क्षेत्र में जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्राधान्य मिला है और हिन्दी-उपन्यास अनेक दिशाओं में विस्तृत होता जा रहा है ।

29.4. हिन्दी कहानी-साहित्य

भारतीय साहित्य में वेदों, उपनिषदों, बौद्ध जातकों और संस्कृत साहित्य में अनेक कहानियाँ प्राप्त होती हैं । 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश' में नीतिपरक कथाएँ हैं । 'कथासरित्सागर', 'वेतालपंचविंशति', 'बृहत्कथा' आदि में प्राचीन भारतीय कहानियाँ प्राप्त होती हैं । कुछ आलोचकों ने हिन्दी कहानी का आविर्भाव इंशा अल्ला कृत 'रानी केतकी की कहानी' से माना है तो और कुछ राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद की 'राजा भोज का सपना' और भारतेंदु हरिश्चन्द्र की 'अद्‌भुत अपूर्व सपना' को स्वीकारा

है । हिन्दी कहानी-साहित्य के विकास-क्रम के अध्ययन हेतु इसे पाँच भागों में विभक्त किया जाता है । यथा-भारतेंदु-युग, प्रसाद-युग, प्रेमचन्द-युग, प्रेमचन्दोत्तर युग तथा स्वातंत्र्योत्तर कहानी-साहित्य ।

29.4.1. भारतेंदु-युग

भारतेंदु-युग में आधुनिक कहानियों का प्रतिबिंब दिखायी नहीं देता । 'हरिश्चन्द्र-चंद्रिका' में 'मालती', 'सार-सुधानिधि' में 'तपस्वी' आदि कहानियाँ उपन्यास व कहानी के मध्यस्वरूप को व्यक्त करती हैं । आधुनिक कहानियों का आरंभ 'सरस्वती' (1900 ई.) पत्रिका के प्रकाशन से हुआ । किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमति' शीर्षक सर्वप्रथम मौलिक कहानी 1900 ई. में प्रकाश में आई । इसमें कहानी-कला के स्वरूप का पूर्ण विकास हुआ है । इसी समय में 'छत्तीसगढ़ मित्र' नामक साहित्यिक मासिक में स्वर्गीय पं.माधवराव सप्रे की 'टोकरी-भर मिट्टी' कहानी प्रकाशित हुई । इस कहानी में आज की कहानी के बीज विद्यमान हैं । 1902 ई. में किशोरीलाल गोस्वामी की 'गुलबहार' और मास्टर भगवानदास की 'प्लेग की चुडैल' कहानियाँ प्रकाशित हुईं । 1903 ई. में आचार्य शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का सपना', बंग महिला की 'दुलाईवाली', गिरिजादत्त बाजपेयी की 'पंडित-पंडितानी' आदि कहानियाँ प्रकाशित हुईं । 1907 ई. में बंग महिला कृत 'जंबुकी न्याय', वृंदावनलाल वर्मा की 'राखीबंद भाई' और मैथिलीशरण गुप्त की 'नकली किला' आदि कहानियाँ प्रकाशित हुईं । हिंदी की मौलिक कहानियों की परंपरा का आरंभ प्रसाद के आगमन से ही होता है । प्रसाद की प्रथम कहानी 'ग्राम' (1911 ई.) उनके मासिक पत्र 'इंदु', में प्रकाशित हुई । इस युग की कहानियों में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की 'कानों में कंगना' (1913 ई.), विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की 'रक्षाबंधन' (1913 ई.) चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था'

(1915 ई.) और प्रेमचंद की 'पंचपरमेश्वर' (1916 ई.) नामक कहानियाँ उल्लेखनीय हैं ।

29.4.2. प्रसाद-युग

प्रसादजी ने अपने युग में भावप्रधान कहानियों का आरंभ किया । कवि होने के नाते इनकी कहानियों में कवित्व का प्राधान्य है । इनके 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी', 'इंद्रजाल' आदि कहानी-संग्रह उपलब्ध हैं । इनमें संग्रहीत कहानियाँ भावप्रधान, वातावरणप्रधान, घटनाप्रधान व चरित्रप्रधान हैं । इनकी कहानियों में आदर्श तथा भारतीय दर्शन का समन्वय है । इनकी भावप्रधान परंपरा को विकसित करने का श्रेय चंडी प्रसाद हृदयेश को है । इन्होंने अपने 'सुधांशु' और 'अनाख्या' नामक कहानी-संग्रह में प्रसाद की भावात्मकता को ही प्राधान्य दिया है । इनके अतिरिक्त इस युग के कहानीकारों में रायकृष्ण दास, विनोदशंकर व्यास, गोविंदवल्लभ पंत आदि उल्लेखनीय हैं ।

29.4.3. प्रेमचंद-युग

प्रेमचंद तथा उनके युग के कहानीकारों ने आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परंपरा अपनायी । प्रेमचंद ने हिंदी में तीन सौ से अधिक कहानियाँ लिखी है ; जो 'प्रेम-द्वादशी', 'प्रेम-पचीसी', 'प्रेम-पूर्णिमा', 'प्रेम-प्रसून', 'सप्तसरोज़', 'मानसरोवर' आदि में संग्रहीत हैं । इन्होंने अपनी कहानियों में मानवतावाद तथा उपयोगितावाद की प्रतिष्ठा की है । जीवन के अनेक कारूणिक चित्र इनकी कहानियों में चित्रित हैं । प्रेमचंद-युग के अन्य कहानीकारों में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' तथा पृथ्वीनाथ भट्ट उल्लेखनीय हैं । गुलेरी जी ने 'उसने कहा था', 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का काँटा' शीर्षक की कहानियाँ लिखकर हिन्दी कहानी-साहित्य में अमर हो गए । सुदर्शन की प्रथम कहानी 'हार की जीत'

1920 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई । इनके कई कहानी-संग्रह, 'सुदर्शन-सुधा', 'सुदर्शन-सुमन', 'पुष्पलता', 'गल्पमंजरी', 'सुप्रभात', 'नगीना', 'पनघट' आदि नामों से प्रकाशित हैं । ये सभी कहानीकार विषय, शैली एवं भाषा की दृष्टि से प्रेमचंद के अनुयायी हैं ।

29.4.4. प्रेमचंदोत्तर युग

प्रेमचंदोत्तर युग का कहानी-साहित्य यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषणात्मक, प्रभाववादी तथा सामाजिक यथार्थवादी परंपराओं को लेकर चलता है । यथार्थवादी परंपरा के प्रतिष्ठापक पांडेय बेचनशर्मा 'उग्र' हैं । इन्होंने राजनीतिक-सामाजिक परंपराओं, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों पर खुलकर प्रहार किया । इनके यथार्थवादी स्वर व्यंग्य व क्रांति से भरे हैं । 'चिनगारियाँ', 'बलात्कार' आदि इनके कहानी-संग्रह हैं । उग्र तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री की कहानियों में सामाजिक कुरीतियों व पाखंडों का उद्‌घाटन हुआ है । 'रजकण' और 'अक्षत' शास्त्री जी के कहानी-संग्रह हैं । जैनेंद्र ने कहानी-कला को नई दिशा प्रदान की है । उन्होंने अपने जीवनदर्शन को लौकिकता एवं अलौकिकता के मध्य ग्रहण किया है । यह जीवनदर्शन मनोवैज्ञानिक भावभूमि पर स्थापित है । इनके कहानियों के संग्रह हैं - 'स्पर्धा', 'फाँसी', 'वातायन', 'पाजेब', 'एक रात', 'दो चिडियाँ' आदि । इस मनोवैज्ञानिक परंपरा के अन्य कहनीकार हैं सियारामशरण गुप्त । इनकी कहानियाँ कोमल भावनाओं की हैं, जो 'मानुषी' नामक संग्रह में संकलित हैं । अज्ञेय तथा इलाचंद्र जोशी मनोविश्लेषणात्मक परंपरा के कहानीकार हैं जो फ्रायड के एकांगी मनोविश्लेषणवाद से अधिक प्रभावित हैं । अज्ञेय के प्रमुख कहानी-संग्रह हैं - 'त्रिपथगा', 'परंपरा', 'कोठरी की बात' और 'जयदोल' आदि । जोशिजी ने भी अज्ञेयजी की तरह व्यक्तिचरित्र के अहं का उद्‌घाटन किया है, किंतु अनकी दिशा

अज्ञेय के विपरीत है । इनके कहानी-संग्रह हैं - 'रोमांटिक', 'आहुति', 'होली', 'दीवाली', 'छाया' आदि । इस परंपरा के अन्य कहानीकारों में नलिनविलोचन शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, नरोत्तम नागर आदि उल्लेखनीय हैं । 'विष के दाँत' नलिनजी का प्रसिद्ध कहानी-संग्रह है । वर्माजी के 'खिलते फूल', 'इंस्टालमेंट', वाजपेयी जी के 'हिलोर', 'पुष्पकरणी' आदि कहानी-संग्रह भी प्रसिद्ध हैं । प्रभाववादी कहानी-परंपरा का प्रारंभ सद्‌गुरूशरण अवस्थी से हुआ है । इसे विकसित करनेवालों में चंद्रगुप्त विद्यालंकार का नाम उल्लेखनीय है । इन कहानीकारों की कहानियों में प्रभावात्मकता का प्राधान्य है । अवस्थी के कहानी-संग्रह हैं - 'फूटा शीशा', 'पड़ोस की कहानियाँ' आदि । विद्यालंकार के कहानी-संग्रह हैं - 'चंद्रकला', 'अमावास' आदि । सामाजिक यथार्थवादी परंपरा का सूत्रपात प्रेमचंद कर चुके थे । इसे अभिनव स्वरूप देनेवाले हैं यशपाल । ये मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित हैं । इनकी कहानियों में समाज की कुरीतियों की कटु आलोचना है । इनके कहानी-संग्रह हैं - 'अभिशप्त', 'आहुतियाँ', 'ज्ञानदान', 'तर्क का तूफान', 'धर्मयुद्ध', 'उत्तराधिकारी', 'चित्र का शीर्षक' आदि ।

29.4.5. स्वातंत्र्योत्तर कहानी-साहित्य

स्वातंत्र्योत्तर काल में ग्रामांचल कहानियों ने सर्वप्रथम ध्यान आकृष्ट किया । इसके साथ ही कसबों और नगरों की कहानियाँ भी लिखी गयीं । ग्रामांचल के कहानीकारों में शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, फणीश्वरनाथ रेणु प्रमुख हैं । इनकी कहानियों में गाँव की माटी की सोंधी गंध और गाँव के लोगों का जीवन चित्रित है । इस काल में कहानी-क्षेत्र में कई मोड़ आये, कई नाम दिये गये जिसकी चर्चा यहाँ की जा रही है ।

'नई कहानी' की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इसने जीवन के

बहुकोणीय पक्षों को आधार बनाया और एक व्यापक मानवीय धरातल को उसकी यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया । नई कहानी व्यक्ति तथा सामाजिकता के बीच गतिशील होती है और दोनों की चेतना के समन्वय से प्राण ग्रहण करती है । नई कहानी अपने समय के यथार्थ को पूरी तरह वहन करते हुए ऐतिहासिक तथा समसामयिक संदर्भों से विकसित आधुनिकता को अंकित करती है । बदली हुई परिस्थितियों, औद्योगीकरण के कारण नयी जीवन-स्थितियों व देशी-विदेशी प्रभावों के बीच जी रहे मनुष्य की अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ भी बदल गयीं ; व्यक्ति-व्यक्ति के परस्पर संबंध भी बदल गये । अतः नई कहानी आग्रहों की कहानी न बनकर सामयिक सत्यों व यथार्थ परिवेश का वाहक बन गई । कमलेश्वर, मोहन राकेश, अमरकांत, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, राजेन्द्र यादव, कृष्णा सोबती आदि ने शहरी जीवन की संकुलता के अत्यंत सजीव वास्तविक चित्र प्रस्तुत किये हैं । नई कहानी एक स्थिति और अनुभूति के युगपत् संबंध को अपना केन्द्र बनाकर, युग के बड़े संदर्भ में उसका अर्थ खोजने का प्रयास करती है । मोहन राकेश के 'नए बादल', 'एक और जिन्दगी', 'राजेंन्द्र यादव के 'जहाँ लक्ष्मी कैद है, 'छोटे-छोटे ताजमहल', 'प्रतीक्षा', कमलेश्वर के 'देवा की माँ', 'खोई हुई दिशाएँ' आदि कहानी-संग्रह इस विधा के प्रतिबिंब हैं । कमलेश्वर इस कालावधि के अत्यंत सशक्त कहानीकार हैं । कहानी-लेखिकाओं में शिवानी, मेहरून्निसा परवेज़, रजनी पनिकर, मृदुला गर्ग आदि भी उल्लेखनीय हैं । इनकी कहानियों में नारी मानसिकता को आधुनिक जीवन के नए आयामों में देखने, परखने, प्रस्तुत करने का प्रयास भी मिलता है ।

नई कहानी-अंदोलन की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप **'सचेतन कहानी'** का सूत्रपात हुआ । इसके प्रवर्तक डॉ.महीप सिंह हैं । इन्होंने अपनी पत्रिका 'सचेतना' के

माध्यम से इस आंदोलन को चलाया । इन कहानियों में सचेतना अर्थात् विचारों की जागरूकता को विशेष मान्यता दी गयी । सचेतन कहानी एक दृष्टि है जिसमें जीवन जीया भी जाता है और जाना भी जाता है । इसमें निराशा, अनास्था, मृत्यु बोध, व्यर्थता बोध आदि होता है और सचेतन कहानीकार केवल संवेदनाओं का ही चित्रण नहीं करता, बल्कि उससे संबंधित पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन की समस्याओं को भी प्रस्तुत करता है । सचेतन कहानी आंदोलन से जुड़े अन्य कहानीकार हैं मनहर चौहान, रामकुमार 'भ्रमर', सुखवीर, कुलभूषण, वेद राही, सुदर्शन चोपडा आदि ।

1960 ई. के बाद का एक विशिष्ट आंदोलन है **'अकहानी'**, जो पेरिस में जन्मी 'एंटी स्टोरी' का भारतीय नामकरण है । अकहानी का 'अ' उपसर्ग एक विशेषता ही नहीं, एक मूल्य है । यह एक अमूर्त कथा-विधा अथवा शिल्पहीन कहानी है । अकहानी जिस स्तर पर झुँझलाहट तथा खीझ को व्यक्त करती है, वह उसकी निर्वैयक्तिकता को वैयक्तिक रूप प्रदान करती है । यह वक्रोक्तिपूर्ण विधा है और आत्मपीड़न, संत्रास आदि बृहत्तर सत्यों को उद्घाटित करती है । अकहानी आंदोलन के उन्नायकों में जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परामर, दूधनाथ सिंह, श्रीकांत वर्मा, प्रयाग शुक्ल आदि उल्लेखनीय हैं । इन्होंने कहानी को जीवन के समस्त मूल्यों से मुक्त घोषित करते हुए अकथित कथ्यों एवं तथ्यों को प्रस्तुत किया है ।

कमलेश्वर ने 1971 ई. के लगभग **'समांतर कहानी'** आंदोलन का प्रवर्तन किया । यह अकहानी की प्रतिक्रिया के रूप में प्रवर्तित हुआ । 'समांतर' से तात्पर्य है - कहानी को आम आदमी के जीवन की परिस्थितियों तथा समस्याओं के समानान्तर प्रतिष्ठित करने का प्रयास । इसलिए इन कहानीकारों ने कहानी के क्षेत्र में जीवन और समाज को व्यापक रूप में ग्रहण करते हुए उसकी विविध स्थितियों,

विसंगतियों, विषमताओं तथा विद्रूपताओं को उकेरने का व्यापक लक्ष्य निर्धारित किया । समांतर कहानी में इसी व्यापक लक्ष्य को मूर्त रूप देने के लिए मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय समाज की विभिन्न स्थितियों, विषमताओं तथा समस्याओं का सूक्ष्म चित्रण किया गया है । स्त्री-पुरूष के स्वस्थ व संतुलित संबंधों का अंकन भी इन कहानियों में हुआ है । समांतर कहानीकारों में कमलेश्वर, मधुकर सिंह, इब्राहिम शरीफ, श्रवण कुमार, नरेंद्र कोहली, मणि मधुकर, सनत कुमार, निरूपमा सेवती, सुधीर आदि उल्लेखनीय हैं ।

'सहज कहानी' आंदोलन के प्रवर्तक अमृतराय हैं । इन्होंने घोषित किया कि कहानी का लक्ष्य-जीवन को सहज रूप में प्रस्तुत करना और जीवन के कटु सत्यों व भ्रष्ट व्यवस्था को उजागर करना है । आठवें दशक में इस कहानी आंदोलन का नव-अभ्युत्थान दुबारा डॉ.सुशीलकुमार फुल्ल द्वारा हुआ । उन्होंने इसकी पुनर्प्रतिष्ठा करते हुए कहा कि मानवीय संवेदना का सहानुभूतिपूर्ण कलात्मक चित्रण 'सहाज कहानी' का मेरूदण्ड है ।

'समकालीन कहानी' के प्रवर्तक गंगा प्रसाद विमल तथा **'सक्रिय कहानी'** के उन्नायक राकेश वत्स माने जाते हैं । समकालीन कहानी में समकालीनता या आधुनिकता पर तथा सक्रिय कहानी में आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता पर विशेष जोर दिया गया था । सातवें-आठवें दशक में हिन्दी कहानी-साहित्य बहुमुखी प्रगति की ओर अग्रसर है । इस समय भावनात्मक, यथार्थवादी, आदर्शवादी, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, पारिवारिक, हास्य-व्यंग्य-प्रधान, विज्ञान-संबंधी आदि विभिन्न विषयों से संपृक्त कहानियाँ प्रकाश में आयीं और आज भी आ रही हैं । महेंद्र भल्ला, रमेश बक्षी, गिरिराज किशोर, रवींद्र कालिया, सुदर्शन चोपड़ा आदि कहानीकारों ने व्यक्ति चेतना से अनुप्राणित होकर नगरों के उच्चवर्गीय समाज की

विविध प्रवृत्तियों का अंकन किया है । अमरकांत, गोविंद मिश्र, रामकुमार, अवधनारायण मुद्‌गल आदि कहानीकारों ने सामाजिक चेतना युक्त ग्रामीण व शहरी जीवन का चित्रण व्यापक दृष्टि से किया है । इनके अतिरिक्त रामदरश मिश्र, मिथिलेश्वर, कामतानाथ, जितेंद्र भाटिया आदि ने भी ग्रामीण जीवन के विभिन्न पक्षों तथा मजदूरों के जीवन-संघर्ष का जीवंत चित्रण किया है । हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी आदि ने हास्य-व्यंग्यपूर्ण शैली में आधुनिक जीवन और समाज के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है । महिला कथाकारों ने आधुनिक नारी की बदलती हुई स्थितियों, कामकाजी महिला की समस्याओं, दांपत्य एवं पारिवारिक जीवन की अनुभूतियों, स्त्री की बदलती मान्यताएँ आदि का चित्रण किया है । इस दृष्टि से शिवानी, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, मेहरून्निसा परवेज़, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग , मंजुल भगत, इंदुबाली, मणिका मोहनी, निरूपमा सेवती, चित्रा मुद्‌गल, सूर्यबाला, कुसुम अंसल, अचला नागर आदि महिला कथाकारों के नाम उल्लेखनीय हैं ।

29.5. हिन्दी निबंध-साहित्य

हिन्दी-साहित्य में निबंध-लेखन भारतेंदु-युग से ही प्रारंभ हुआ । आचार्य द्विवेदी ने उसे परिष्कृत बनाया, आचार्य शुक्ल ने इसको विकास के साथ-साथ प्रौढ़ता प्रदान की । सन् 1940 में हिन्दी-निबंध का पर्याप्त प्रसार हुआ और उसमें वैविध्य का दर्शन भी हुआ । इस क्रमिक विकास को चार युगों में बाँटा जा सकता है - भारतेंदु-युग, द्विवेदी-युग, शुक्ल युग तथा शुक्लोत्तर युग ।

29.5.1. भारतेंदु-युग

यह युग निबंध-साहित्य का प्रारंभिक युग है । भारतेंदु ने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के द्वारा इस गद्य-विधा के विकास में अपना महत्वपूर्ण योग दिया । इस युग

में साधारण और गंभीर दोनों ही विषयों पर निबंध लिखे गये । इस युग के निबंधकारों के समक्ष निबंध का कोई निर्धारित और सर्वमान्य रूप नहीं था । ये मनोरंजक शैली में निबंधों की रचना करते थे । इन निबंधों पर उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप थी । भारतेंदु के सहयोगी निबंधकारों में प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, राधाचरण गोस्वामी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । बालकृष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र ने अपने निबंध-लेखन द्वारा हिन्दी गद्य-शैली को नवीन दिशा प्रदान की । भारतेंदु-युग के निबंधों की विशेषता है कि इस युग के निबंधकार पहले पत्रकार थे और बाद में निबंधकार । अतः निबंध लिखते समय पाठकों की रूचि तथा तत्कालीन परिस्थितियों व समस्याओं के प्रति सजग रहते थे । इनके निबंधों में विषय की व्यापकता, सहजता और आत्मीयता के दर्शन होते हैं । आचार्य शुक्ल ने कहा है कि, "यह युग बच्चे के समान हंसता खेलता आया था जिसमें बच्चों की सी निश्छलता, अक्खड़पन, सरलता और तन्मयता थी ।" इस युग के निबंधकारों ने इतिहास, राजनीति, धर्म, दर्शन, भाषा, प्रकृति, यात्रा, आत्मचरित, हास्य-व्यंग्य आदि विषयों से संबंधित निबंध लिखे हैं । साथ ही, राष्ट्रीयता, देशप्रेम तथा जन-जीवन की विभिन्न समस्याओं को अपने निबंधों में प्राधान्य दिया है । इस युग के निबंधों की शैली में भी विविधता है - जैसे, व्यंग्यात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक आदि । इस युग के निबंध तथा निबंधकारों में जो उपर्युक्त विशेषताएँ लक्षित होती हैं, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है । इस प्रकार हिन्दी-निबंध साहित्य के क्षेत्र में भारतेंदु-युग अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

29.5.2. द्विवेदी-युग

भारतेंदु-युग के पश्चात् आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का इस क्षेत्र में महत्तर योग रहा है । इन्होंने सर्वप्रथम भाषा की शुद्धि, परिष्कार एवं नैतिक उपयोगिता पर

बल दिया । उन्होंने शुद्ध व्याकरण सम्मत भाषा में निबंध लिखने का प्रोत्साहन दिया और निबंधों में नैतिकता, आदर्श एवं औचित्य को भी प्रोत्साहन मिला । द्विवेदीजी के सहयोगी निबंधकारों में पं.माधव प्रसाद मिश्र, अध्यापक पूर्णसिंह, बाबू गोपालराम गहमरी, बाबू ब्रजनंदन सहाय, पं.पद्मसिंह शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, शिवपूजन सहाय, वियोगी हरि, किशोरीदास बाजपेयी आदि महतवपूर्ण हैं । द्विवेदी-युग के निबंधों की विशेषताएँ इस प्रकार हैं - इस युग के निबंधों की भाषा शुद्ध, परिष्कृत एवं व्याकरण सम्मत है । द्विवेदी युगीन निबंधों में विचारात्मकता, गंभीरता व वैयक्तिकता की प्रधानता है । इस युग में अंग्रेजी, मराठी, बंगला आदि भाषाओं के श्रेष्ठ निबंधों का अनुवाद भी हुआ और शैली के विविध रूपों का विकास हुआ । शैली में परिष्कार, रोचकता और न्यूनता लाने की चेष्टा की गयी । इस युग के निबंधकारों ने देशी और विदेशी भाषाओं का अनुवाद कर हिन्दी साहित्य के शब्द-भण्डार की वद्धि की । इस प्रकार द्विवेदी युग के निबंध राष्ट्रीय जागृति, राष्ट्रीय चेतना, भारतीय संस्कृति का पुनरूत्थान, देश-प्रेम एवं विश्व-प्रेम की भावनाओं से युक्त हैं । इसी युग में निबंध के सुदृढ़ रूप का निर्माण हुआ ।

29.5.3. शुक्ल-युग

शुक्ल युग में हिन्दी-निबंध साहित्य पूर्णता को प्राप्त हुआ । शुक्लजी के पदार्पण से ही निबंध-रचना का उत्कर्ष प्रारंभ हुआ । इस युग के निबंधों में विषय की गंभीरता, भाषा की समृद्धि और शैली की उत्कृष्टता अपने चरमोत्कर्ष पर थी । शुक्लजी उच्चकोटि के निबंधकार थे । उनके निबंधों में मौलिकता, नवीनता, व्यापकता, गहनता, गंभीर चिंतन एवं शिष्ट हास्य के दर्शन होते हैं । शुक्लजी के सहयोगी निबंधकारों में सियारामशरण गुप्त, गुलाबराय, माखनलाल चतुर्वेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, जयशंकर प्रसाद, बनारसी दास चतुर्वेदी, पं.श्रीराम शर्मा,

पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, राय कृष्णदास, निराला, पंत, राहुल सांकृत्यायन, धीरेंद्र वर्मा, आचार्य नंददुलारे बाजपेयी, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि प्रमुख हैं । शुक्ल-युग के निबंधों की विशेषताएँ इस प्रकार हैं - इस युग के निबंधों में अपने पूर्ववर्ती निबंधों की अपेक्षा गंभीरता, सूक्ष्मता, व्यापकता एवं चिंतन की गहराई है । इस युग में साहित्य, समालोचना, संस्कृति व इतिहास पर मौलिक तथा गंभीर निबंध लिखे गये हैं । इन निबंधों में जहाँ एक ओर विचारों की प्रधानता है वहीं दूसरी ओर भावात्मक गद्य के दर्शन होते हैं । इस युग के निबंधों में हृदय एवं बुद्धि का, विचार एवं भाव का, विषय एवं विषयी का अद्‌भुत समन्वय गोचर होता है । भाव एवं मनोविकार संबंधी निबंध भी विशिष्ट हैं । इस युग के निबंधों में शिष्ट हास्य लक्षित होता है । भाषा एवं शैली का विकास व विविधता भी इस युग की महत्तर उपलब्धि है । शुक्ल-युग हिन्दी-निबंध साहित्य के क्षेत्र में अपना महतवपूर्ण स्थान रखता है । इस युग के निबंध हिन्दी-साहित्य की विशिष्ट निधि हैं । भाव एवं शैली दोनों ही दृष्टियों से इस युग के निबंध उत्कृष्ट हैं ।

29.5.4. शुक्लोत्तर युग

शुक्लोत्तर युग के निबंध-साहित्य में विस्तार तथा विविधता के दर्शन होते हैं । इन निबंधकारों पर आचार्य शुक्ल और उनके सहयोगी निबंधकारों का पूर्ण प्रभाव है । इस युग के निबंधों में भावाभिव्यक्ति को अधिक सरल, भाषा को परिमार्जित तथा व्यंजना शक्ति से परिपूर्ण बनाया गया । इस युग के प्रसिद्ध निबंधकारों में आचार्य नंददुलारे बाजपेयी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ.रामविलास शर्मा, डॉ.नगेन्द्र, शिवदान सिंह चौहान, विद्यानिवास मिश्र आदि प्रमुख हैं । इन निबंधकारों में हजारी प्रसाद द्विवेदी का विशिष्ट स्थान है । शुक्लोत्तर युग के निबंधों की विशेषताएँ इस प्रकार हैं - इस युग के निबंधकारों ने साहित्यिक, समीक्षात्मक, प्रगतिवादी,

व्यक्तिपरक, स्वतंत्र चितनपरक, सांस्कृतिक व हास्य-व्यंग्यपरक निबंध लिखे हैं । इस युग के आलोचनापरक निबंधों में गंभीर एवं व्यापक अध्ययन तथा मौलिक चिंतन का समावेश है । इस युग के निबंधों में जीवन की यथार्थता, कहानी की संवेदना, नाटक की नाटकीयता, उपन्यास की सुंदर कल्पना और गद्य काव्य की भावुकता है । इस युग के निबंध-लेखकों की विशेषताओं का समाहार करते हुए डॉ.विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है - ''संक्षेप में, इस युग में निबंध विषय सीमा के विस्तार के साथ व्यक्तित्व की छाप उत्तरोत्तर गहरी हुई और साहित्यिक समालोचना को निबंध की आत्मीयता से संयुक्त किया गया है । व्यक्तिपरक निबंधों में संस्कृति, साहित्य और दर्शन को बड़ी सुष्ठु शैली में समाविष्ट कर रोचक बनाकर रखा गया । विचार-विमर्श को पूरी क्षमता के साथ इसी युग के निबंध में स्थान प्राप्त हुआ । मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के धरातल पर निबंध में भारतीय तथा पाश्चात्य काव्य चिंतन व्यापक परिवेश में ग्रहण किया गया । राजनीति और समाजशास्त्र के विषयों पर भी निबंध-संग्रह प्रकाशित हुए हैं ।''

29.5.5. स्वातंत्र्योत्तर निबंध-साहित्य

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् निबंध पुनः व्यक्ति प्रधान होने लगे । निबंध विचारों को प्रस्तुत करने का प्रमुख तथा सशक्त माध्यम बनता जा रहा है । उसके स्वरूप में बदलाव है - आकार में लघुतर होता जा रहा है ; बोलचाल की भाषा का प्रयोग हो रहा है ; तद्भव और देशी शब्दों की प्रचुरता दिखायी देती है । कोई भी विषय निबंध का विषय बन जाता है । युगीन निबंधकारों में विद्यानिवास मिश्र, हरिशंकर परसाई, कुबेरनाथराय, विवेकीराय, शिवप्रसाद सिंह, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, लक्ष्मीचन्द्र जैन, अमृतराय आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । इन निबंधकारों ने

ललित निबंध नामक विधा को जन्म दिया । आज हिन्दी में निबंध-विकास उच्च शिखर पर है ।

29.6. हिन्दी-आलोचना साहित्य

आलोचना शब्द 'लोच' धातु से बना है, जिसका अर्थ है - 'देखना' । अतः किसी वस्तु या कृति की सम्यक् व्याख्या, उसका मूल्यांकन करना ही आलोचना है । 'आलोचना' से पूर्व 'सम' उपसर्ग को जोड़कर 'समालोचना' शब्द भी प्रचलित है, जिसका अर्थ संतुलित दृष्टि से किसी रचना के गुण-दोषों का विवेचन । आलोचना के अर्थ में एक शब्द 'समीक्षा' भी प्रचलित है । संस्कृत की व्युत्पत्ति के अनुसार समीक्षा का अर्थ है - "जिसमें रचना की अन्तर्व्याख्या और अवान्तरार्थों का विच्छेद किया गया है ।" इस प्रकार आलोचना, समालोचना और समीक्षा - ये तीनों ही शब्द समानार्थी हैं और इनका अभिप्राय वस्तुओं के गुण-दोषों की परख करने से है ।

29.6.1. परिभाषा

आलोचना के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि "आलोचना कला और साहित्य के क्षेत्र में निर्णय की स्थापना है ।" मैथ्यू आर्नल्ड़ के अनुसार "आलोचक को तटस्थ भाव से वस्तु के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान का अनुभव और प्रचार करना चाहिए । आलोचना की सबसे बड़ी विशेषता है तटस्थता । वस्तु के स्वरूप की जिज्ञासा ही उसे आलोचना के मार्ग में प्रवृत्त करती है ।" कार्लाइल के शब्दों में, "आलोचना पुस्तक के प्रति उद्‌भूत आलोचक की मानसिक प्रतिक्रिया का परिणाम है ।" इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार, "आलोचना का अर्थ वस्तुओं के गुण-दोषों की परख करना है, चाहे वह परख साहित्य-क्षेत्र में की गई हो या ललित कला के क्षेत्र में इसका स्वरूप निर्णय में समाविष्ट है ।" पाश्चात्य विद्वानों की भाँति ही भारतीय विद्वानों ने भी आलोचना की परिभाषा प्रस्तुत की है ।

डॉ.श्यामसुन्दर दास का कथन है - "साहित्य-क्षेत्र में ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है । .....यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें, तो उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा ।" डॉ.गुलाबराय के अनुसार, "आलोचना का मूल उद्देश्य कवि की कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद कर पाठकों को उस प्रकार के आस्वाद में सहायता देना तथा उनकी रूचि को परिमार्जित करना एवं साहित्य की गतिविधि निर्धारित करने में योग देना है ।" इस प्रकार स्पष्ट है कि आलोचना एक ओर सत्साहित्य के निर्माण को प्रोत्साहन देती है तो दूसरी ओर असत् साहित्य के निर्माण में गत्यावरोध उपस्थित करती है । यह साहित्यकारों की निरंकुशता पर अंकुश लगाती है और साहित्य तथा पाठकों के संबंध को एक सामान्य भाव भूमि पर अवस्थित करती है । समालोचक लेखक व पाठक के बीच में सेतु का कार्य करता है । अतः "उसका दोनों के प्रति उत्तरदायित्व है । एक ओर वह कवि कृति का सहृदय व्याख्याता और निर्णायक होता है तो दूसरी ओर वह अपने पाठक का विश्वासपात्र समझा जाता है । कवि की भाँति वह द्रष्टा-स्रष्टा दोनों ही होता है, लोक-व्यवहार और शास्त्र का ज्ञान, प्रतिभा तथा अभ्यास आदि साधन जैसे कवि के लिए अपेक्षित हैं, उसी प्रकार समालोचक के लिए भी ।"

29.6.2. आलोचना के प्रकार

संस्कृत आलोचना पद्धतियों का अपना महत्व है, जिनके नाम इस प्रकार हैं - आचार्य-पद्धति, टीका-पद्धति, शास्त्रार्थ-पद्धति, सूक्ति-पद्धति, खण्डन-पद्धति, लोचन-पद्धति आदि । पाश्चात्य काव्यशास्त्र की आलोचना की विविध पद्धतियों को दो भागों में विभक्त किया जाता है - सैद्धांतिक आलोचना और व्यावहारिक आलोचना । डॉ.श्यामसुंदर दास ने समालोचना के चार प्रमुख भेद माने हैं -

सैद्धांतिक समीक्षा, निर्णयात्मक समीक्षा, आत्मप्रधान प्रभाववादी समीक्षा और व्याख्यात्मक समीक्षा । बाबू गुलाबराय ने व्याख्यात्मक समीक्षा की सहायक रूप से उपस्थित होनेवाली चार अन्य आलोचन-पद्धतियों का भी उल्लेख किया है - ऐतिहासिक आलोचना, तुलनात्मक आलोचना, मनोवैज्ञानिक आलोचना और प्रगतिवादी आलोचना । उक्त पद्धतियों का परिचय निम्नांकित है -

(1) सैद्धांतिक समीक्षा

यह आलोचना की एक विशिष्ट पद्धति है । 'बहुत-सी एक-सी कृतियों का अध्ययन कर जब आलोचक आलोचना के मापदण्ड के रूप में किन्हीं सामान्य नियमों का निर्धारण करता है, तो उस समीक्षा को सैद्धांतिक समीक्षा कहते हैं ।' इस आलोचना का विषय साहित्य या काव्य के स्वरूप का विश्लेषण होता है । कुछ सैद्धांतिक समीक्षा संबंधी कृतियाँ हैं - रीतिकाल के लक्षण ग्रंथ की 'चिंतामणि', बाबू गुलाबराय का 'सिद्धांत और अध्ययन' तथा 'काव्य के रूप' आदि ।

(2) निर्णयात्मक समीक्षा

इसमें आलोचक किसी भी आलोच्य कृति और उसके सिद्धांतों पर विचार कर अपना निर्णय अवश्य देता है । इस आलोचना में समालोचक का रूप न्यायाधीश का होता है । वह कलाकार की मौलिकता या प्रतिभा पर ध्यान न देकर शास्त्रीय नियमों की कसौटी पर रचना की परीक्षा करता है । इस आलोचना को शास्त्रीय आलोचना भी कहते हैं । संस्कृत और हिन्दी में यह समीक्षा पद्धति विशेष प्रचलित है । हिन्दी के आरंभिक युग में इसका पर्याप्त प्रचलन था । महावीर प्रसाद द्विवेदी और मिश्रबंधु की आलोचनाएँ प्रायः इसी कोटी की हैं ।

(3) आत्मप्रधान प्रभाववादी समीक्षा

इस आलोचना में बुद्धितत्व की अपेक्षा भावावेश का प्राधान्य होता है । हिन्दी

साहित्य के भारतेंदु एवं द्विवेदी युग में इस शैली का बोलबाला था । श्रीपद्मसिंह शर्मा द्वारा की गई बिहारी की आलोचना इसी कोटी की है । इस समीक्षा पद्धति की मुख्य विशेषताएँ हैं-इसमें आलोचक का दृष्टिकोण प्रधान होता है, अतः यह विषयी प्रधान आलोचना होती है । इसमें नियमों की अपेक्षा स्वच्छन्दता का सहारा लिया जाता है । इसमें भावों की अपेक्षा वाणी का विलास ही अधिक होता है और एकपक्षीय निंदा तथा प्रशंसा विशेष होती है ।

(4) व्याख्यात्मक समीक्षा

इस पद्धति में आलोचक अन्वेषक होता है । अतएव वह ईमानदारी से आलोचना करता है । पूर्वाग्रह, रूढ़ि, सिद्धांत और भावुकता को त्यागकर वह एक अन्वेषक के रूप में लेखक की अंतरात्मा में प्रविष्ट होता है और अत्यंत सहृदयतापूर्वक उसके आदर्शों, उद्देश्यों, विशेषताओं की व्याख्या और विवेचना करता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुंदर दास और हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि इसी कोटि के आलोचक हैं ।

(5) ऐतिहासिक आलोचना

इस आलोचना में साहित्यकार के युग, उसकी परिस्थितियाँ और परिवेश को देखकर प्रभाव का मूल्यांकन किया जाता है । इसमें आलोचक परिस्थितिजन्य प्रभावों के परिप्रेक्ष्य में ही आलोच्य वस्तु को कसौटी पर कसता है । परंतु यह आलोचना-पद्धति लेखक की परिस्थितियों पर ही केंद्रित होने के कारण एकपक्षीय होती है ।

(6) तुलनात्मक आलोचना

इस आलोचना के अंतर्गत पूर्ववर्ती समकालीन तथा परवर्ती साहित्यकारों के साथ कवि और उसके साहित्य की तुलना कर उसके महत्व को स्थापित किया जाता

है ।'' इस आलोचना में सफल होने के लिए आलोचक को बहुज्ञ होना चाहिए । उसे यह भी स्मरण रखना चाहिए कि तुलना, समान वस्तुओं में ही हो सकती है । साथ ही, उसका दृष्टिकोण पूर्ण वैज्ञानिक होना चाहिए, तभी वह अनासक्त भाव से दोनों पक्षों के गुण-दोषों का विवेचन कर सकेगा ।

(7) मनोवैज्ञानिक आलोचना

मनोवैज्ञानिक आलोचना वहाँ होती है, जहाँ लेखक के वैयक्तिक स्वभाव, परिस्थितियों एवं प्रभाव को उसकी कृति के आधार पर परखा जाता है । इसमें आलोचक लेखक के स्वभाव आदि के ऊहापोह में इतना तल्लीन हो जाता है कि कृति की उपेक्षा हो जाती है । मनोवैज्ञानिक आलोचना अन्तर्मन की गुत्थियाँ सुलझाने में कृति के रहस्य की ओर से उदासीन रहते हैं । इन आलोचकों की भाषा-शैली भी दुरूह होती है ।

(8) प्रगतिवादी आलोचना

इस आलोचना-पद्धति के लिए सामाजिक यथार्थवादी आलोचना, सोवियत समीक्षा पद्धति तथा समाजवादी आलोचना आदि नाम भी प्रचलित हैं । यह आलोचना पद्धति बीसवीं शताब्दी की देन है । इसमें साहित्य को वर्ग की उपज मानकर सामाजिक आवश्यकताओं के सहारे उसका मूल्यांकन किया जाता है । इसमें वर्ग-संघर्ष के आदर्श और विचारधाराओं को महत्व दिया जाता है । इस आलोचना का मुख्य गुण स्पष्टता है ।

29.6.3. हिन्दी-आलोचना का विकास

इसमें संदेह नहीं कि गद्य की विधाओं की भाँति हिन्दी आलोचना का उद्‌भव और विकास आधुनिक काल में ही हुआ है । संस्कृत काव्यालोचना विशेष प्रकार से काव्य-सिद्धांत के निरूपण में व्यक्त हुई है । कवि-शिक्षा और काव्य-शास्त्रीय ग्रंथों के

अतिरिक्त भाष्य,टीका, वार्तिक, तिलका, वृति आदि रूप हैं । प्रधानतया इसी प्रकार के आलोचना के रूप हिन्दी-साहित्य में भी मिलते हैं । रीतिकाल में हिन्दी आलोचना के प्रधानतः दो रूप मिलते हैं - लक्षण ग्रंथों में सैद्धांतिक आलोचना और प्रसिद्ध काव्य ग्रंथों और लक्षणों की व्याख्या करने वाले ग्रंथों में टीका, वचनिका, तिलक आदि रूपों में व्याख्यात्मक आलोचना । रीतिकालीन अनेक लक्षण ग्रंथ जैसे 'कविप्रिया', 'कविकुल-कल्पतरु', 'काव्य-सरोज', 'काव्य निर्णय' आदि सैद्धांतिक आलोचना के ही रूप हैं । रामचरितमानस और बिहारी सतसई की टीकाएँ तथा श्रीपति, चिंतामणि और सोमनाथ के द्वारा लिखी गई वचनिका वार्ता, तिलक आदि व्याख्यात्मक आलोचना के रूप हैं । फिर भी रीतिकालीन समीक्षा अधिकांश शास्त्रीय कोटि की है । डॉ.पद्मसिंह का कहना है कि भक्तिकालीन और रीतिकालीन आलोचनाएँ अपने युग की काव्य रचनाओं के अनुशीलनार्थ हुई थीं । भारतेंदु के आगमन से गद्य का आविर्भाव हुआ और गद्य की विभिन्न विधाओं की रचना होने लगी तो उनके अध्ययन के लिए आलोचना का भी प्रारंभ हुआ । भारतेंदुयुगीन आलोचना साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं से प्रकाश में आई । इस दिशा में 'कवि वचन सुधा' (1868), 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' (1873), 'हिन्दी प्रदीप' (1881), 'आनंद कादंबिनी' (1891), 'नागरी प्रचारणी पत्रिका' (1897), आदि पत्र उल्लेखनीय हैं । उनमें पुस्तक प्राप्त होने की सूचना छापने के साथ कुछ टिप्पणियाँ भी छाप दी जाती थीं । भारतेंदु के पश्चात् परिचयात्मक आलोचना का अपेक्षाकृत गंभीर रूप बालकृष्ण भट्ट तथा बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की आलोचना में मिलता है । इन दोनों ने सन् 1880 में लाला श्रीनिवासदास के 'संयोगिता स्वयंवर' की आलोचना क्रमशः 'हिन्दी प्रदीप' और 'आनंदकादंबिनी' में की । अन्य पत्रकार इनके अनुसरण पर ही आलोचनाएँ लिखा करते थे । सन् 1847 में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के प्रकाशन

से भारतेंदु युगीन परिचयात्मक आलोचना ने अनुसंधान और अनुशीलन का गंभीर रूप ग्रहण किया था । इस पत्रिका में पहले ही वर्ष में गंगाप्रसाद अग्निहोत्री ने 'समालोचना', जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने 'समालोचनादर्श' और अंबिकादत्त व्यास ने 'गद्य काव्य मीमांसा' जैसे सैद्धांतिक आलोचना के गंभीर निबंध लिखे । इनके अतिरिक्त इस पत्रिका द्वारा महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्यामसुंदरदास, मिश्रबंधु आदि के आलोचनात्मक निबंध भी प्रकाश में आए । इस प्रकार नागरी प्रचारिणी पत्रिका का हिन्दी आलोचना के निर्णय में विशेष हाथ है । इस पत्रिका के अतिरिक्त 'सुदर्शन' (1900), 'सरस्वती' (1900), और 'समालोचना' (1902), ने आधुनिक आलोचना को संवारने का कार्य किया । इनमें 'सरस्वती' का सर्वाधिक महत्व है । इस प्रकार बीसवीं शताब्दी में हिन्दी आलोचना का विकसित रूप दिखायी देता है और इस शताब्दी के समीक्षा-जगत में मिश्रबंधु, डॉ.श्यामसुंदर दास, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्मा, लाला भगवानदीन', कृष्ण बिहारी मिश्र तथा रामचंद्र शुक्ल आदि के प्रतिभापूर्ण योगदान से हिन्दी समीक्षा को विकसित होने का अवसर मिला । इन समीक्षकों में से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, डॉ.श्यामसुंदरदास और आचार्य रामचंद्र शुक्ल का हिन्दी समीक्षा जगत में विशेष महत्वपूर्ण स्थान है । हिन्दी में पुस्तक रूप में समालोचना का सूत्रपात द्विवेदी जी द्वारा ही हुआ । द्विवेदी का उद्देश्य हिन्दी भाषा का उत्थान और हिन्दी में सत्साहित्य का निर्माण करना था । हिन्दी के व्याकरण के संबंध में जो भी लेख मिलते हैं, उनमें उनकी आलोचनात्मक और सुधारवादी प्रवृत्ति का परिचय मिलता है । बीसवीं शताब्दी में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का पदार्पण अत्यंत महत्वपूर्ण है । डॉ. इन्द्रनाथ मदान का कथन है - "आचार्य शुक्ल ने आलोचना के निश्चित मानदंडों को स्थापित कर समीक्षा को व्यवस्थित रूप दिया था । इससे पहले आलोचना में गुण-दोष, शैली के आधार पर वैयक्तिक रूचि का

प्राधान्य था । शुक्ल ने प्रयोगात्मक एवं सैद्धांतिक आलोचना का समन्वय कर निश्चित मानदंडों को तुलसी, सूर और जायसी के मूल्यांकन से स्थापित किया ।'' उनके आलोचना संबंधी सिद्धांतों के मूल में उनकी समाज-मंगल की भावना है । इन्होंने हिन्दी-आलोचना को व्यवस्थित रूप देकर काव्य की सत्ता को सामाजिक पृष्ठभूमि पर स्थापित किया और स्थायी प्रतिमानों की उद्‌भावना की । आचार्य शुक्ल हिन्दी के श्रेष्ठतम समीक्षक हैं । समीक्षा क्षेत्र में शुक्लोत्तर काल में हुए परिवर्तनों के संबंध में डॉ.विजयेन्द्र स्नातक ने अपने निबंध में कहा है - ''शुक्लोत्तर हिन्दी-समीक्षा का विकास प्रमुख रूप से तीन धाराओं में हुआ । पहली धारा तो उन आलोचकों की थी जो शुक्लजी की समीक्षा-पद्धति का अनुगमन करके प्राचीन और नवीन कवियों की काव्यकृतियों की व्याख्यात्मक आलोचना लिखने में प्रवृत्त हुए । उन्होंने आलोचना के प्रयोग पक्ष को ही पल्लवित किया । इनमें सर्वश्री विश्वनाथ मिश्र, कृष्णशंकर शुक्ल, लक्ष्मी नारायण सिंह 'सुधांशु', जनार्धन मिश्र, पंकज आदि का नाम लिया जा सकता है । इन आलोचकों को हम शुक्ल सम्प्रदाय (स्कूल) के आलोचक कह सकते हैं । दूसरी धारा में हम उन छायावादी आलोचकों को रखते हैं, जिन्होंने आत्मपरक (सब्जेक्टिव) शैली की काव्य-मीमांसा का बीड़ा उठाया और आलोचना के प्रभाववादी ढंग को प्रचलित किया । शांतिप्रिय द्विवेदी, मोहनलाल महतो 'वियोगी' आदि कतिपय आलोचक इस कोटि में आते हैं । काव्य के सौंदर्य पक्ष को इन लोगों ने काव्यमयी भाषा में व्यक्त किया और पाठक की चेतना विस्मय विमुग्ध होकर रह गई । तीसरी धारा में वे प्रगतिशील आलोचक हैं, जो मार्क्सवाद के आधार पर सामाजिक तथा आर्थिक मूल्यों की तुला पर साहित्य को तोलने में समीक्षा की उपादेयता स्वीकार करते हैं । भौतिक जीवन दर्शन को साहित्यिक जीवन-दर्शन से मिलाकर देखने की अभिनव दृष्टि इन आलोचकों से मिली । रूढ़ सिद्धांतों से पीछा

छुड़ाने का भी इस कोटि की समीक्षा में आग्रह रहा है । रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवनन्दन सिंह चौहान प्रभृति लेखकों को उनका उन्नायक कहा जा सकता है ।'' इन तीन धाराओं के साथ ही, कुछ स्वतंत्र कोटि के विचारक भी इस क्षेत्र में अवतरित हुए । यथार्थ में शुक्लोत्तर समीक्षा को इन्हीं आलोचकों ने आगे बढ़ाया । नवीन चेतना का संचार करनेवाले हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंद दुलारे बाजपेयी, बाबू गुलाबराय, रामकृष्ण शुक्ल, डॉ.नगेन्द्र, डॉ.सत्येन्द्र आदि का विशेष योगदान रहा है । इन आलोचकों की विशेषता यही है कि इन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र की आधारभूत मान्यताओं के धरातल पर वस्तुपरक विवेचन किये । आधुनिक समीक्षा जगत् में अनुसंधान व अध्ययन का सूत्रपात विश्वविद्यालयों में पी-एच.डी., डी.फिल. और डी.लिट. के लिए प्रस्तुत होनेवाले शोध प्रबन्धों के साथ हुआ । इस दिशा में डॉ.पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डॉ.जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र, डॉ.ब्रजेश्वर वर्मा, डॉ.जगदीश गुप्त, डॉ.माताप्रसाद गुप्त, डॉ.भगीरथ मिश्र आदि उल्लेखनीय हैं । इस प्रकार हिन्दी आलोचना विकासोन्मुख है । वह प्रगति-पथ पर अग्रसर हो रही है । इस क्षेत्र में कुछ अन्य समीक्षकों का योग भी स्मरणीय है । वे हैं डॉ.नामवर सिंह, डॉ.विनय मोहन शर्मा, डॉ.सरनाम सिंह शर्मा, डॉ.धर्मवीर भारती, डॉ.रामरतन भटनागर, डॉ.त्रिलोकी नारायण दीक्षित आदि ।

29.7. समाहार

इस इकाई में हिन्दी गद्य-साहित्य के विकास-क्रम की चर्चा की गई है । हिन्दी गद्य विभिन्न रूपों में विभिन्न कालों में विकसित होकर अभिवृद्ध हुआ है । हिन्दी-उपन्यास, कहानी, निबंध तथा आलोचना साहित्य आदि गद्य-विधाओं का समग्र परिचय यहाँ प्रस्तुत है । साथ ही इन विधाओं के प्रमुख साहित्यकारों की जानकारी भी दी गयी है ।

29.8. बोधप्रश्न

1. हिन्दी गद्य-साहित्य की विकास-यात्रा पर प्रकाश डालिए ।
2. हिन्दी उपन्यास-साहित्य के उद्‌भव और विकास पर विचार कीजिए ।
3. हिन्दी कहानी-साहित्य के विकास-क्रम पर लेख लिखिए ।
4. कथा-साहित्य में प्रेमचंद-युग की महत्ता की चर्चा कीजिए ।
5. हिन्दी निबंध-साहित्य पर संक्षिप्त निबंध लिखिए ।
6. हिन्दी आलोचना-साहित्य के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख करते हुए उसके विकास-क्रम को समझाइए ।

NOTES

NOTES

NOTES

NOTES

NOTES

इकाई तीस : हिन्दी नाट्य साहित्य

इकाई की रूपरेखा

30.0. उद्देश्य

30.1. प्रस्तावना

30.2. हिन्दी नाट्य साहित्य का उद्‌भव और विकास

- 30.2.1. भारतेंदु के पूर्व हिन्दी नाटक
- 30.2.2. भारतेंदुयुगीन हिन्दी नाटक
- 30.2.3. द्विवेदीयुगीन हिन्दी नाटक
- 30.2.4. प्रसादयुगीन हिन्दी नाटक
- 30.2.5. प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य
- 30.2.6. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक

30.3. हिन्दी एकांकी

- 30.3.1. पद्य-एकांकी
- 30.3.2. गीति-नाट्य
- 30.3.3. रेडियो नाटक

30.4. हिन्दी रंगमंच

- 30.4.1. लोकनाट्य साहित्य को प्रस्तुत करनेवाले रंगमंच
- 30.4.2. साहित्यिक नाटकों को प्रस्तुत करनेवाले रंगमंच

30.5. नुक्कड़ नाटक

30.6. समाहार

30.7. बोध प्रश्न

30.0. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हिन्दी-गद्य की प्रमुख विधा-नाट्य साहित्य का विशद परिचय दिया जा रहा है, जिसके अध्ययन के बाद आप -

1. हिन्दी नाट्य साहित्य के उद्‌भव और विकास की संपूर्ण जानकारी प्राप्त करेंगे ;
2. भारतेंदुयुगीन हिन्दी नाटक परिवेश से परिचित होंगे ;
3. द्विवेदीयुग में नाटकों के विकास की जानकारी प्राप्त करेंगे ;
4. प्रसाद युगीन हिन्दी नाटकों के महत्व को समझ पायेंगे ;
5. प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य से परिचित होंगे ;
6. स्वतंत्र्योत्तर नाटक-साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे ;
7. हिन्दी-एकांकी का विस्तृत परिचय प्राप्त करेंगे ;
8. हिन्दी रंगमंच के इतिहास की जानकारी प्राप्त करेंगे ;
9. नुक्कड़ नाटकों की महत्ता समझ पायेंगे ।

30.1. प्रस्तावना

नाट्य-लेखन तथा अभिनय की भारतीय परंपरा बहुत पुरानी है । संस्कृत साहित्य में नाट्य-रचना और रंगमंचीय प्रदर्शनों का लंबा इतिहास रहा है । किंतु मध्य-युग में आकर प्रेक्षागृहों और नाट्य-प्रदर्शनों का क्रमशः ह्रास होता गया । विदेशी आक्रमणों ने भी राजप्रासादों से जुड़ी हुई रंगशालाओं को नष्ट कर दिया । जयशंकर प्रसाद लिखते हैं कि, ''मध्यकालीन भारत में जिस आतंक और अस्थिरता का साम्राज्य था, उसने यहाँ की प्राचीन रंगशालाओं को तोड़-फोड़ दिया ।'' मध्ययुग के उत्तरार्द्ध में ब्रजभाषा हिन्दी में भी कुछ ऐसे नाटक प्रणीत हुए, जिनकी मूल प्रकृति तो काव्यपरक ही है, किंतु संवाद-शैली में रचे जाने के कारण उन्हें नाटक की संज्ञा दी गयी है । अंग्रेजी राज्य स्थापित होने पर रंग-कार्य एवं नाट्य प्रदर्शनों को पुनः नया जीवन मिला । पारसी रंग कंपनियाँ स्थापित हुईं और नाट्य प्रदर्शन के व्यवसाय में लगीं । बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में आकर पारसी थियेटर के

हिन्दी नाटकों का स्वर बदलने लगा । हिन्दी के साहित्यिक नाटक की परंपरा तो भारतेंदु से ही प्रारंभ होती है । उसके बाद नाटकों का विकास विभिन्न युगों में होता आया है ।

30.2. हिन्दी नाट्य शास्त्र का उद्‌भव और विकास

हिन्दी के कुछ मान्य आलोचकों ने हिन्दी नाट्य-साहित्य का उद्‌भव और विकास काल 19वीं शताब्दी स्वीकार किया है, किंतु डा.दशरथ ओझा ने अपने महत्वपूर्ण अनुसंधान द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दी नाटक का उद्‌भव और विकास 13वीं शताब्दी में ही हो चुका था । डॉ.ओझा के मतानुसार हिन्दी का सर्वप्रथम नाटक 'गयसुकुमार रास' है, जिसका निर्माणकाल 1289 वि. है । इसी क्रम में इन्होंने हिन्दी नाटकों की परंपरा का उद्‌भव 13वीं शताब्दी के 'संदेशरासक' से माना है और उसका प्रारंभिक विकास मैथिली नाटकों के रूप में सिद्ध करने का प्रयास किया है । इतना तो सर्वमान्य है कि मैथिली भाषा में उपलब्ध नाटक वस्तुतः हिन्दी के प्राचीनतम नाटक माने जा सकते हैं तथा इनमें नाटकीय तत्वों का समावेश भी मिलता है । मैथिली भाषा में प्रणीत नाटकों ने अपना प्रभाव नेपाल, असम तथा उड़ीसा प्रांत की भाषाओं पर भी डाला । 'विद्या-मिलाप', 'मुदित कैवलवाच', 'जगतप्रकाशमल्ल', 'सुमजित मित्रमल्ल' तथा 'हरिश्चंद्रनृत्यक' मैथिली नाटकों ने हिन्दी नाटकों की सफल पृष्ठभूमि 16वीं शताब्दी में तैयार की ।

हिन्दी नाट्य साहित्य का विकासात्मक अध्ययन करने के लिए उसे अधोलिखित कालों में विभक्त करना आवश्यक है ।

1. भारतेंदु के पूर्व हिन्दी नाटक
2. भारतेंदुयुगीन हिन्दी नाटक
3. द्विवेदीयुगीन हिन्दी नाटक
4. प्रसादयुगीन हिन्दी नाटक

5. प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक
6. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक

30.2.1. भारतेंदु के पूर्व हिन्दी नाटक

भारतेंदु के पूर्व सत्रहवीं शताब्दी से ही हिन्दी नाटकों की रचना होने लगी थी, परंतु उनमें नाट्यशास्त्र के तत्वों का सर्वथा अभाव है । देव कवि-कृत 'देवमायाप्रपंच' ब्रजवासीदास-कृत 'प्रबंधचंद्रोदय' तथा बनारसीदास लिखित 'समयसार', इत्यादि नाटक श्रृंगारकाल में ही लिखे जा चुके थे । पर, इन नाटकों की गणना नाट्य साहित्य के अंतर्गत नहीं की जा सकती । भारतेंदु के पूर्व निवाज कृत 'शकुंतला', हृदयराम-कृत 'हनुमन्नाटक', प्राणचंद चौहान-कृत 'रामायण महानाटक' आदि नाटकों का उल्लेख आवश्यक है ; परंतु इनमें भी नाटकीय तत्वों का अभाव है । भारतेंदु के पूर्व केवल दो ही मौलिक नाटक लिखे गए, जिनमें प्रथम, रीवाँनरेश महाराजा विश्वनाथसिंह का 'आनंदरघुनंदन' है तथा द्वितीय, भारतेंदु के पिता गोपालचंदजी का 'नहुष' नाटक । इनमें पात्रों के उचित समावेश के कारण नाटकीय तत्वों का उचित संरक्षण हो पाया है । इतना तो मानना पड़ेगा कि गोपालचंदजी की प्रतिभा में जो मौलिकता थी, उसका पूर्ण निखार हरिश्चंद्र में मुखरित हुआ ।

30.2.2. भारतेंदुयुगीन हिन्दी नाटक

भारतेंदु को हिन्दी का सर्वप्रथम नाटककार उद्घोषित किया गया है । इन्होंने जहाँ एक ओर जनसामान्य में राष्ट्रीय भावना को जागृत किया वहीं दूसरी ओर सामाजिक और धार्मिक जागरूकता भी दी । डॉ.गणपति चंद्र गुप्त ने लिखा है - "यदि हम एक ऐसा नाटककार ढूँढ़े जिसने नाट्य शास्त्र के गंभीर अध्ययन के आधार पर नाट्य कला की सैद्धांतिक आलोचना लिखी हो, जिसने प्राचीन और

नवीन, स्वदेशी और विदेशी नाटकों का अध्ययन और अनुवाद किया हो, जिसने वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक और मौलिक नाटकों की रचना की हो और जिसने नाटकों की रचना ही नहीं अपितु उन्हें रंगमंच पर खेलकर भी दिखाया हो, तो इन सब विशेषताओं से संपन्न नाटककार हिन्दी में ही नहीं, समस्त विश्व-साहित्य में केवल दो-चार मिलेंगे और उन सबमें भारतेंदु का स्थान सबसे ऊँचा होगा ।''

भारतेंदु ने अपने समय से पूर्व की सभी नाट्य परंपराओं को अपनाया तथा युगानुरूप उनमें संशोधन भी किया । इन्होंने कुछ संस्कृत तथा बँगला के नाटकों का अनुवाद तथा अनेक मौलिक नाट्य कृतियों का प्रणयन किया । इनके नाटक जनजीवन में राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक चेतना भरने के अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुए । डॉ.बच्चन सिंह के शब्दों में, ''भारतेंदु ने अपने नाटकों की कथावस्तु जीवन के विविध क्षेत्रों से ली । किसी नाटक में एकांतिक प्रेम का निरूपण किया गया है तो किसी में समसामयिक सामाजिक तथा धार्मिक समस्याओं का चित्रण, कहीं ऐतिहासिक और पौराणिक वृत्त के आधार पर नाटक का ढाँचा खड़ा किया गया है तो कहीं देश की दुर्दशा का मार्मिक चित्र उपस्थित किया गया है । भारतेंदु के पूर्व के नाटकों के सीमित विषय की दीवारें टूट गईं और विषयभूमि को पूरा विस्तार मिला । 'नीलदेवी' और 'सतीप्रताप' में इतिहास और पुराण की उज्ज्वल गाथाएँ हैं, जिनके आलोक में पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध से विपथगामिनी आर्य महिलाएँ अपना मार्ग पहचान सकती हैं । यह वास्तव में पाश्चात्य संस्कृति के विरोध में सांस्कृतिक जागरण का चिह्न है । वस्तुतः अतीत की स्वस्थ कथाओं और उदात्त चरित्रों से शक्तिसंचय करना ही इनका मुख्य उद्देश्य है ।''

भारतेंदुजी की उपर्युक्त प्रवृत्तियों के आधार पर उस युग के अन्य साहित्यिकों

ने भी नाटकों की रचना की । लाला श्रीनिवासदास ने 'प्रह्लाद चरित्र', 'तप्त संवरण', 'रणवीर-प्रेममोहिनी' तथा 'संयोगिता-स्वयंवर' नामक नाटक लिखे । प्रताप नारायण मिश्र ने 'कलिकौतुक', 'कलिप्रभाव', 'जुआरी-खुआरी' और 'हठी हमीर' नामक नाटकों की रचना की । इस युग के अन्य नाटककारों में राधाकृष्ण, बालकृष्ण भट्ट तथा राधाचरण गोस्वामी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । भारतेंदु-युग में सामाजिक, राजनीतिक तथा राष्ट्रीय भावनापूर्ण नाटक तथा व्यंग्य और विनोद से परिपूर्ण प्रहसन लिखे गए । सामाजिक नाटकों में सामाजिक समस्याओं को लेकर उनकी कुरीतियों पर विचार किया गया है । इनमें भारतेंदु का 'प्रेमजोगिनी', राधाकृष्ण दास का 'दुःखिनी बाला' और प्रतापनारायण मिश्र का 'गो-संकट' प्रमुख हैं । राजनीतिक तथा राष्ट्रीय भावना को जगानेवाले नाटकों में विदेशी शासन से पीड़ित एवं कुचली हुई भारतीय जनता का चित्रण है । अंग्रेजों के आर्थिक शोषण से उत्पन्न दारिद्र्य, अशिक्षा तथा दुर्दशा का सफल चित्रण इन नाटकों में मिलता है ।

भारतेंदु के 'भारत-दुर्दशा' में दयनीय भारत के अनेक चित्र मिलते हैं । भारतेंदु-कृत 'अंधेरनगरी' तथा 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' सफल प्रहसन हैं, जिनमें प्रचीन सामाजिक परंपराओं तथा गली-सड़ी रूढ़ियों पर कटु व्यंग्य किया गया हैं । बालकृष्ण भट्ट का 'शिक्षादान' तथा राधाचरण गोस्वामी का 'बूढ़े मुँह मुहासे' भी अच्छे प्रहसन हैं ।

भारतेंदु-युग में अनुवादों की परंपरा का पूर्ण निर्वाह किया गया । संस्कृत के नाटकों के अनुवाद की प्राचीन परंपरा को अक्षुण्ण रखा गया । इस काल में बँगला और अंग्रेजी के नाटकों का भी अनुवाद किया गया । लाला सीताराम तथा रामकृष्ण वर्मा का नाम अनुवादकारों में प्रमुख है ।

भारतेंदु-युग में दैवी एवं पौराणिक पात्रों में कमी की गई तथा उनके स्थान पर मानव-पात्रों का सर्जन हुआ । मनुष्य की बुद्धि और उसके भावों का चमत्कार दिखाने में ही नाटककार अधिक लीन हुआ । नाटकों का संबंध जीवन से स्थापित करने का श्रेय भारतेंदुयुगीन नाटककारों को ही है । पद्य के स्थान पर गद्य और ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ीबोली की प्रतिष्ठा इन नाटकों में सफलतापूर्वक हुई । संस्कृत की नाट्य शैली-नांदीपाठ, भरतवाक्य, स्वगतभाषण तथा काव्यात्मक चमत्कार-का विशेष अनुकरण हुआ । पारसी नाट्य शैली का भी परोक्ष प्रभाव कहीं-कहीं दिखाई पड़ता है ।

30.2.3. द्विवेदीयुगीन हिन्दी नाटक

द्विवेदी-युग में मध्यवर्ग की वृद्धि के कारण नाटककारों का संबंध जनजीवन से टूट गया । आर्यसमाज की नैतिकता और महात्मा गाँधी की सात्विकता तथा आदर्शवादिता से इस युग का नाटककार अधिक प्रभावित है । तत्कालीन देशव्यापी सांस्कृतिक और राजनीतिक आंदोलनों ने भी इस युग के नाटकों पर विशेष प्रभाव डाला । द्विवेदीजी वस्तु, शैली और भाषा में ही परिष्कार एवं परिमार्जन करते रह गए, इन्होंने नाट्य रचना पर विशेष जोर नहीं दिया। यही कारण है कि इस युग में नाटकों की विशेष उन्नति नहीं हुई। भारतेंदु-युग के पश्चात् प्रसाद-युग में ही हिन्दी नाटक का कोश भरना आरंभ हुआ । द्विवेदी-युग ने इस ओर इतना ध्यान ही नहीं दिया ।

द्विवेदी-युग में मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के नाटकों की रचना हुई । मौलिक नाटककारों में बदरीनाथ भट्ट, देवीप्रसाद, माखनलाल चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं । इस युग में ऐतिहासिक नाटकों की अधिक रचना हुई । जगन्नाथ चतुर्वेदी का 'तुलसीदास', वियोगी हरि का 'प्रबद्ध यामुने', मिश्रबंधुओं का 'शिवाजी',

माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुनयुद्ध' इसी प्रकार के नाटक हैं । जमुनादास मेहरा का 'पापी', बदरीनाथ भट्ट का 'विवाह-विज्ञापन' आदि अच्छे प्रहसन हैं । जी.पी.श्रीवास्तव ने भी कुछ प्रहसन लिखे ।

इस युग में अनेक अनूदित नाटक प्रकाश में आए । इस समय संस्कृत की अपेक्षा बँगला और अंग्रेजी के नाटकों का अधिक अनुवाद हुआ । पं.रूपनारायण पांडेय ने बँगला के उत्कृष्ट नाटकों का अनुवाद किया । अंग्रेजी के शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद गोपीनाथ पंडित ने किया । लाला सीताराम ने संस्कृत के अनेक नाटकों का अनुवाद किया । इस युग के अन्य अनुवाद करनेवालों में सत्यनारायण कविरत्न, रामकृष्ण वर्मा तथा गोपालराम के नाम भी उल्लेखनीय हैं ।

द्विवेदी-युग में पूर्ववर्ती नाट्य प्रवृत्तियों का विकास हुआ । पद्य की भाषा धीरे-धीरे खड़ीबोली होने लगी । नाटकों के भीतर पद्य का प्राधान्य घटने लगा । गद्य की भाषा में तत्सम शब्दों के प्रयोग के कारण निखार लाया गया ।

30.2.4. प्रसादयुगीन हिन्दी नाटक

प्रसादजी ने हिन्दी नाटकों को अपनी मौलिक शैली प्रदान की । इसका कारण उनका मौलिक व्यक्तित्व था । भारतेंदु के पश्चात् प्रसादजी ने ही आगे के नाटककारों के लिए मार्ग प्रशस्त किया । प्रसादजी ने अपनी नूतन नाट्य शैली द्वारा हिन्दी नाटकों का श्रृंगार ही नहीं किया, अपितु पात्रों को भी स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया ; नाट्य शिल्प में नवीनताओं का समावेश कर हिन्दी नाट्य साहित्य को चरमोन्नति की सीमा पर पहुँचाया ।

हिन्दी नाट्य साहित्य में प्रसादजी अपना मौलिक व्यक्तित्व लेकर आए । प्राचीन पद्धति के नांदीपाठ, मगलाचरण, प्रस्तावना आदि की प्रसादजी ने उपेक्षा की

तथा पाश्चात्य एवं भारतीय नाट्य कला का सुन्दर सामंजस्य स्थापित किया । स्थान-परिवर्तन या दृश्य परिवर्तन के स्थान पर 'गर्भांक' का प्रयोग न कर 'दृश्य' का प्रयोग किया । पारंपरिक विदूषक पात्रों के स्थान पर हँसोड़ पात्रों की नियोजना की । पात्रों के स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं शील-वैचित्र्य का समावेश किया । नाटकों में रस-योजना को महत्ता दी । प्रतिनिषिद्ध दृश्यों के नियम में भी परिवर्तन किया । अभिनय की रोचकता बढ़ाने तथा चरित्र-चित्रण में विकास लाने हेतु नाटकों में गीतों की योजना की । इतना ही नहीं, प्रसादजी ने अपनी इन नवीनताओं के साथ प्राचीन नाट्य परंपराओं को भी स्थान दिया । इन्होंने पंचसंधियों, अर्थप्रकृतियों तथा कार्यावस्थाओं का नियोजन किया । नाटकों में अंतर्द्वंद्वों का कलात्मकतापूर्ण चित्रण किया । इन्होंने इस प्रकार के अंतर्द्वंद्वों में पाश्चात्य एवं भारतीय दोनों प्रकार के अंतर्द्वंद्वों का सामंजस्य स्थापित किया । अपने अतीत के मोह को प्रसादजी नाटकों में भी नहीं छोड़ सके हैं । प्राचीन ऐतिहासिक नाटकों से वर्तमान की स्थिति का चित्रण मिलता है । प्रसादजी अपने नाटकों में सुखांत एवं दुखांत से परे प्रसादांत प्रतीत होते हैं ।

प्रसादजी के नाटक विविध विषयात्मक हैं । इनके प्रथम श्रेणी के नाटकों में ऐतिहासिक नाटकों का स्थान आता है, जिनमें 'कल्याणी-परिणय', 'प्रायश्चित', 'राज्यश्री', 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'स्कंधगुप्त', 'चंद्रगुप्त' तथा 'ध्रुवस्वामिनी' हैं । इन ऐतिहासिक नाटकों में ऐतिहासिक तत्वों का विश्लेषण मौलिक प्रतिभा के आधार पर किया गया है तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति का अन्वेषण नाटकीय कला के माध्यम से संपन्न है । इन नाटकों द्वारा प्रसादजी ने विभिन्न संस्कृतियों के संघर्ष का चित्र उपस्थित किया है तथ भारतीय संस्कृति की महत्ता का चित्रण किया है ।

राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में इन नाटकों का ऐतिहासिक स्थान है । प्रसादजी के दूसरी श्रेणी के नाटक 'सज्जन' तथा 'जनमेजय का नागयज्ञ' पौराणिक नाटक हैं । उनके माध्यम से नाटककार पाठकों के सामने पौराणिक वातावरण का दृश्य उपस्थित करता है । तीसरी श्रेणी के नाटकों में 'ध्रुवस्वामिनी' का नाम आता है । यह पाश्चात्य शैली पर लिखित एक समस्या-नाटक है । चौथी श्रेणी में प्रतीकात्मक समस्यामूलक नाटक 'कामना' और 'एक घूँट' आते हैं । इनमें भावों एवं मनोविकारों का प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है । पाँचवीं श्रेणी के नाटकों में गीतिनाट्य शैली पर रचित 'करूणालय' नामक नाटक आता है । इस प्रकार, प्रसादजी ने जिन विभिन्न नाट्यविधाओं का श्रीगणेश किया, उनका अनुकरण परवर्ती नाटकों में परिव्याप्त है ।

आलोचकों को प्रसादजी के नाटकों में एक त्रुटि दिखाई देती है, वह है नाटकों की रंगमंच पर अनभिनेयता । इसका कारण प्रसादजी के नाटकों की संस्कृतगर्भित भाषा, लंबे कथोपकथन एवं भावपूर्ण रहस्यवादी उक्तियाँ हैं । युद्ध, सेना, आत्महत्या आदि दृश्यों के समावेश भी अभिनेयता में बाधक हैं । पर, अब प्रसन्नता की बात है कि उनके नाटकों का अभिनय किया जा रहा है । 'ध्रुवस्वामिनी' को तो अभिनेयता में अत्यधिक सफलता मिली है ।

30.2.5. प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य

प्रसादजी के परवर्ती काल में इनकी नाट्य विधाओं का क्रमशः विकास हुआ, किंतु वस्तु और शैली में प्रचुर नवीनता दिखाई दी । प्रसादोत्तर काल में नॉर्वे-निवासी इब्सन के प्रभाव के कारण नाटकों में निम्नलिखित विशेषताएँ देखने को मिलीं -

1. इतिहास की ममता का त्याग तथा दैनिक समस्याओं से विषय का चयन ।
2. नाटक के पात्र संपत्तिशाली, उच्चकुलोत्पन्न राजा, सामंत आदि न रहकर साधारण समाज के व्यक्ति रहने लगे ।

3. व्यक्तिगत संघर्ष कम हुआ तथा समाज के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न हुई ।
4. बाहरी संघर्ष की अपेक्षा विचारों का संघर्ष पात्रों में अधिक आया । पात्रों के मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण को प्राधान्य दिया गया ।
5. स्वगतकथन कम हुए ।
6. आदर्शवाद के स्थान पर यथार्थवाद की प्रतिष्ठा हुई ।

उपर्युक्त प्रभावों के परिणामस्वरूप हिन्दी में समस्यामूलक नाटकों की रचना अधिकाधिक होने लगी । फिर भी पौराणिक, ऐतिहासिक तथा प्रतीकात्मक नाटकों की रचना स्थगित नहीं हुई है ।

प्रसादोत्तर काल के नाटककारों में सर्वप्रथम **गोविंदवल्लभ पंत** का नाम आता है । पंत जी ने अपने नाटकों की रचना प्रसादजी की भावभूमि पर संपन्न की है । इनके नाटकों में इतिहास और कल्पना का अद्‌भुत सामंजस्य है । प्रसादजी की तरह ऐतिहासिक नाटक लिखने में इन्हें अत्यधिक सफलता मिली है । पंतजी ने समाज की समस्याओं को भी पाठकों के सामने रखने की चेष्टा की है । पात्रों के चरित्र-चित्रण में ये अधिक सफल हुए हैं । इनके नाटकों में कला के विकास के साथ-साथ अभिनेयता का प्राधान्य है । इनके लिखे नाटकों में 'कंजूस की खोपड़ी', 'वरमाला', 'राजमुकुट', 'अंगूर की बेटी', 'अंतःपुर का छिद्र', 'सिंदूर-बिंदी', 'ययाति' आदि उल्लेखनीय हैं ।

गोविंदवल्लभ पंत के अनंतर **हरिकृष्ण 'प्रेमी'** सफल नाटककार हुए । 'प्रेमी' को नाटकलेखन में प्रसादजी से कम सफलता नहीं मिली है । प्रेमीजी भी ऐ नाटककार हैं ; किन्तु इनके ऐतिहासिक नाटकों की सामग्री का चयन मु लकाल न हुआ है । भारतीय समाज और मानव की समस्या का समाधान हिंदू-मुस्लिम एकता और संपर्क है, इसे प्रेमीजी ने स्वीकार किया है । इसके लिए गाँधीवादी हल

(समाधान) को महत्ता दी । नाटकों में राष्ट्रीय आदर्श, नैतिकता तथा देश प्रेम का स्वरूप प्रतिष्ठित है । इनके लिखे नाटकों में 'स्वर्ण-विहान', 'पाताल-विजय', 'रक्षाबंधन', 'शिवासाधना', 'प्रतिशोध', 'आहुति', स्वप्नभंग', 'छाया', 'बंधन', 'मित्र', 'विषपान', 'उद्धार', 'शपथ', आदि उल्लेखनीय हैं ।

प्रेमीजी के पश्चात् **लक्ष्मीनारायण मिश्र** समसामयिक नाटककारों में अधिक यशस्वी हैं । मिश्रजी के ऊपर इब्सन और शॉ का विशेष प्रभाव पड़ा है, जिससे इन्होंने हिंदी नाट्य साहित्य में समस्याप्रधान नाटकों की श्रीवृद्धि की । मिश्रजी ने नाटकों में बौद्धिकता को स्वीकार किया है और भावुकता को निर्मूल बताया है । समाज और उसकी विशेष समस्या इनके नाटक की कथावस्तु बन गई है । विशेषतः इनकी सामाजिक समस्या नारी रही है और उसी का समाधान करने में इन्होंने विभिन्न दृष्टिकोण अपनाए हैं । बुद्धितत्व एवं विशुद्ध कामसमस्या का हिन्दी में समावेश करनेवाले सर्वप्रथम मिश्रजी ही हैं । समस्याप्रधान नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे हैं । नाटकों में शुद्ध यथार्थवाद का निरूपण मिश्रजी के ही नाटकों से प्रारंभ होता है । मिश्रजी के लिखे नाटकों में 'समाज के स्तंभ' ; 'संन्यासी', 'राक्षस का मंदिर', 'मुक्ति का रहस्य', 'राजयोग', 'सिंदूर की होली', 'आधी रात', 'अशोक', गरूड़ध्वज' 'नारद की वीणा', 'गुड़िया का घर', 'वत्सराज', 'दशाश्वमेध', 'वितस्ता की लहरें' आदि विशेष प्रसिद्ध हैं ।

मिश्रजी के पश्चात् **उदयशंकर भट्ट** का आविर्भाव सर्वश्रेष्ठ नाटककार के रूप में हुआ । भट्टजी ने पौराणिक नाटकों की रचना अधिक की है । भावनाट्य तथा गीतिनाट्य लिखकर इन्होंने अत्यधिक सफलता प्राप्त की है । भट्टजी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास के साथ कल्पना का अद्‌भुत सामंजस्य है । पौराणिक नाटकों में धार्मिक संघर्ष का निरूपण उच्च कोटि का है । सामाजिक परिवेश के

माध्यम से पात्रों का चरित्र-चित्रण कर इन्होंने पात्रों के चरित्र में नवीन प्राण का संचार किया है । भट्टजी के ऐतिहासिक नाटकों में 'दाहर' और 'विक्रमादित्य' विशेष प्रसिद्ध हैं । 'अंबा' तथा 'सागर-विजय' उत्कृष्ट पौराणिक नाटक हैं । इनके गीतिनाट्यों में 'मत्स्यगंधा', 'राधा', 'विश्वामित्र', 'कालिदास', 'मेघदूत' आदि उल्लेख्य हैं ।

प्रसादोत्तर नाटककारों में **सेठ गोविंददास** अत्याधुनिक हैं । सेठजी ने ऐतिहासिक तथा सामाजिक नाटकों की रचना से हिन्दी नाट्य साहित्य के कोश की अभिवृद्धि ही नहीं संपूर्ति भी की । सेठजी ने अनेक नाटकों की रचना की है । इनके ऐतिहासिक नाटकों में 'हर्ष' तथा 'कर्तव्य' विशेष उल्लेखनीय हैं । इनके सामाजिक नाटकों में समस्याओं का निरूपण अपूर्व कौशल के साथ किया गया है । पात्रों का चरित्र-चित्रण सजीवता लिए हुए अमिट प्रभावशाली है । नाट्य कला के प्रमुख तत्वों के रूप में 'दुःख क्यों ?', 'दलित कुसुम', 'पतित कुसुम', 'हिंसा या अहिंसा' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं ।

इनके अतिरिक्त, ऐतिहासिक नाटककारों में **वृंदावनलाल वर्मा** का नाम विशेष उल्लेखनीय है । ऐतिहासिक नाटकों के साथ-साथ आपने सुंदर समसामयिक सामाजिक नाटक भी लिखे हैं । उनके नाटकों में समाज और उसकी समस्याओं का सुंदर चित्रण मिलता है । वर्माजी के ऐतिहासिक नाटकों में 'हंस-मयूर', 'झाँसी की रानी', 'बीरबल', 'कश्मीर का काँटा', 'पूर्व की ओर', 'फूलों की बोली', आदि उल्लेखनीय हैं । सामाजिक नाटकों में 'राखी की लाज', खिलौने की खोज', 'बाँस की फाँस' आदि हैं ।

उपेंद्रनाथ 'अश्क' भी प्रसादोत्तर नाटककारों में अपना अद्वितीय स्थान रखते

हैं । इन्होंने अपने नाटकों में सामाजिक समस्याओं का सफल चित्र प्रस्तुत किया है । बीच-बीच में हास्य और व्यंग्य के माध्यम से नाटकों में सजीवता लाने का इनका प्रयास प्रशंसनीय है । इनके लिखित नाटकों में 'जय-पराजय', 'स्वर्ग की झलक', 'कैद और उडान', 'छठा बेटा', 'आदिमार्ग' आदि श्रेष्ठ हैं ।

30.2.6. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी नाटक का विकास और भी तीव्रगति से हुआ । पराधीनता से छुटकारा पाने के कारण नई चेतना की जागृति स्वाभाविक थी । हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में भी इस युग में कई संस्थाओं का अवतरण हुआ । सरकार द्वारा 'संगीत और नाटक अकादमी' एवं 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' की स्थापना से रंगमंच की उन्नती में विशेष सहायता मिली । यद्यपि इस युग में कतिपय नाटककार तो अपनी प्राचीन परंपरा को ही निबाह रहे हैं, किंतु कुछ नए नाटककारों ने नाट्य रचना की नई दृष्टि, नई वस्तु एवं नए शिल्प का प्रयोग करते हुए कतिपय अभिनव परंपराओं का प्रवर्तन किया है, जिन्हें तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है -

1. सामाजिक सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित नाटक,
2. व्यक्तिवादी चेतना से अनुप्राणित नाटक तथा
3. राजनीतिक चेतना से संपृक्त नाटक ।

1. सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित नाटक

इस वर्ग में मुख्यतः जगदीश्चंद्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, नरेश मेहता, विनोद रस्तोगी, डा.लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ.शंकर शेष आदि की रचनाएँ आती हैं । जगदीशचंद्र माथुर ने 'कोणार्क', 'पहला राजा', 'दशरथनंदन' आदि कृतियों में आदर्शोन्मुखी दृष्टि से सामाजिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के लिए सराहनीय प्रयास किया है । विष्णु प्रभाकर ने 'डाक्टर', 'युगे-युगे क्रांति', 'टूटते

परिवेश' आदि नाटकों में पारिवारिक और सामाजिक जीवन की अनेक समस्याओं को चित्रित किया है । नरेश मेहता ने 'सुबह के घंटे' तथा 'खंडित यात्राएँ' शीर्षक नाटकों में क्रमशः दलीय लोकतांत्रिक प्रणाली की विषमताओं तथा आधुनिक जीवन के टूटते हुए मूल्यों का उद्‌घाटना किया है । इसी परंपरा के नाटककार विनोद रस्तोगी ने 'नये हाथ' तथा 'बर्फ की मीनार' नाटकों में क्रमशः जमींदारी उन्मूलन के फलस्वरूप उत्पन्न स्थिति एवं आधुनिक परिवार की मनोदशा का चित्रण किया है । नाटक के क्षेत्र में पूरी तरह समर्पित होकर उतरनेवाले नाटककारों में डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इन्होंने लगभग 50 नाटकों की रचना की है । इनकी नाट्य कृतियों में 'अंधा कुआँ', 'रातरानी', 'दर्पण', 'करफ्यू', 'अब्दुल्ला दीवाना', 'एक सत्य हरिश्चंद्र', 'मिस्टर अभिमन्यु' आदि विशेष महत्वपूर्ण हैं । इनके पात्र कहीं पौराणिक हैं तो कहीं काल्पनिक, किंतु वे कई बार अपने सामान्य व्यक्तित्व के अतिरिक्त किसी सांकेतिक प्रतीकार्थ का भी संकेत करते हैं । डॉ.लाल के नाटकों का फलक अति विस्तृत है जिनमें भारतीय गाँवों से लेकर आधुनिक शहरी जीवन की पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक आदि विविध समस्याओं का निरूपण कुशलतापूर्वक किया गया है । डॉ. शंकर शेष ने अपनी रचनाओं में विभिन्न मानव भावनाओं का विश्लेषण करने के साथ-साथ व्यक्ति, समाज एवं संस्कृति के क्षेत्र में व्याप्त अंतर्द्वंद्व को बारीकी के साथ उद्‌घाटित करने की चेष्टा की है । इस दृष्टि से उनके 'बिन बाती के दीप', 'बंदी', 'खजुराहो के शिल्पी', 'एक और द्रोणाचार्य' आदि नाटक उल्लेखनीय हैं ।

2. व्यक्तिवादी चेतना से अनुप्राणित नाटक

इस वर्ग में मुख्य रूप से मोहन राकेश, सुरेंद्र वर्मा, रमेश बक्षी, मुद्राराक्षस आदि नाटककारों की कृतियाँ आती हैं । मोहन राकेश ने अपने तीन नाटकों द्वारा ही

हिंदी नाटक की बुलंदियों को छू लिया है । इनके 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों का राजहंस' और 'आधे-अधूरे' में व्यक्ति एवं समाज के द्वंद्व से उत्पन्न स्थितियों का चित्रण विभिन्न कथानकों के माध्यम से किया गया है । इनके नाटक शिल्प एवं रंगमंच की दृष्टि से भी अत्यंत सफल सिद्ध हुए हैं । सुरेंद्र वर्मा ने 'द्रौपदी', 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' तथा 'आठवाँ सर्ग' शीर्षक नाटकों में परंपरागत मान्यताओं को चुनौती देते हुए नारी-पुरूष के यौन संबंधों की स्वतंत्रता, वैवाहिक बंधन की निस्सारता एवं साहित्य में अश्लीलता के संबंध में नए नजरिए को प्रस्तावित करने की कोशिश की है । रमेश बक्षी में 'देवयानी का कहना हैं' तथा 'तीसरा हाथी' नामक नाटकों में क्रमशः वैवाहिक संस्था की उपयोगिता पर सवालिया निशान लगाते हुए युवा पीढ़ी के लिए पितृत्व के बोझ को हाथी का बोझ सिद्ध किया गया है । मुद्राराक्षस ने अपने 'तिलचट्टा' तथा 'योर्स फेथफुली' नाटकों में क्रमशः काम, प्रेम और विवाह के संबंध में परंपरागत मूल्यों के प्रति विरोध जताते हुए कार्यालय के बाबुओं की यंत्रणा व्यक्त की है ।

3. राजनीतिक चेतना से संपृक्त नाटक

आठवें दशक में भारतीय राजनीति में जिस तेजी से उतार-चढ़ाव आया उसके फलस्वरूप हिन्दी में ऐसे कई नाटक लिखे गए जिनमें समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से तीखा व्यंग्य किय गया है । इनमें दयाप्रकाश सिन्हा का 'इतिहास चक्र' एवं 'कथा एक कंस की', विपिन अग्रवाल का 'ऊँची-नीची टाँग का जाँघियाँ, हमीदुल्ला का 'समय संदर्भ', गिरिराज किशोर का 'प्रजा ही रहने दो', सुशीलकुमार सिंह का 'सिंहासन खाली है', मणि मधुकर का 'रस-गंधर्व', ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुरमुर्ग', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'बकरी' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । व्यंग्य नाटकों की परंपरा को आगे बढ़ाने में

शरद जोशी कृत 'अंधों का हाथी', 'एक था गधा उर्फ अलदाद खाँ' और विनय कृत 'पहला-विद्रोह' एवं 'इन्हें जानते हैं' नाटकों का विशेष योगदान है । इन नाटकों में एक ओर तो प्रजातंत्र के नाम पर जनगण का शोषण करनेवाले उन राजनीतिज्ञों का पर्दाफाश किया गया है जो कि चुनाव जीतने के लिए एवं सत्ता हथियाने के लिए विभिन्न प्रकार के पाखंडों-षड्यंत्रों, खोखले आदर्शों, छलछद्मों एवं झूठे आश्वासनों का सहारा लेते हैं तो दूसरी ओर सत्ताधारियों द्वारा किए जानेवाले दुराचार, भ्रष्टाचार एवं अनाचार का भी चित्रण स्पष्ट रूप से किया गया है । आधुनिक युग में राजनीतिक नेताओं के आदर्शों, मूल्यों और विश्वासों के अवमूल्यन का एक रोचक चित्रण उपर्युक्त नाटककारों ने अपने-अपने नजरिए से किया है । इनकी कृतियों में शिल्प एवं रंगमंच की दृष्टि से भी नवीनता दिखाई देती है ।

आधुनिक जीवन और समाज की विविध परिस्थितियों एवं समस्याओं के चित्रण की दृष्टि से विमल रैना का 'तीन युग', रेवतीशरण शर्मा का 'अपनी धरती', शंभुनाथ सिंह का 'धरती और आकाश' मन्नू भंडारी का 'बिना दीवार का घर', ब्रजमोहन शाह का 'निरंकुश', सर्वदानंद का 'भूमिका', चिरंजीत का 'तसवीर उसकी', अमृतराय का 'हमलोग' आदि नाटक भी उल्लेखनीय हैं । हिन्दी नाटक के क्षेत्र में विशेष लोकप्रियता प्राप्त करने की दृष्टि से श्रीमती कुसुम कुमार का नाम काफी महत्वपूर्ण है । इनके प्रकाशित नाटकों में 'दिल्ली ऊँचा सुनती है', 'संस्कार को नमस्कार', 'रावणलीला', आदि उल्लेखनी ों का रंगमंच पर भी सफलतापूर्वक अभिनय किया जा चुका

हिन्दी नाटक का विकास विविध रूपों ा अनेक दिशाओं में हुआ है । रंगमंच के अभाव के कारण शुरू में इसके विकास की गति धीमी रही, पर

व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा रंगमंच के विकास में योग देने के फलस्वरूप विगत कुछ वर्षों से इसकी प्रगति तेजी से हो रही है । अपने युग और समाज की नवीनतम स्थितियों, संवेदनाओं, परिस्थितियों तथा अनुभूतियों को व्यंजित करने की दृष्टि से हिंदी नाटक अन्य विधाओं की तुलना में सर्वाधिक अधुनातन है और इस क्षेत्र के नाटककारों की अंतर्दृष्टि एवं गंभीर सामाजिक चेतना को प्रमाणित करने में सफल है ।

30.3. हिन्दी एकांकी

हिन्दी नाट्य साहित्य के इस वर्तमान युग में एकांकी-नाटकों का सर्जन एक महत्वपूर्ण प्रयास हैं । पाश्चात्य साहित्य के अनुकरण पर ही हिंदी में एकांकियों का विकास हुआ । एकांकी को वह लघु नाट्यरूप माना गया है, जिसमें एक परिस्थिति, एक घटना या एक भावनाजनित संवेदना की अभिव्यक्ति, किसी संघर्ष के सहारे, चाहे वह बाह्य हो या आभ्यंतर, अभिनेयात्मक शैली में इस प्रकार की जाती है कि उसमें प्रभाव-ऐक्य का उद्‌बोध हो और उस उद्‌बोध से दर्शक और पाठक दोनों की रागात्मिका वृत्ति जग जाए ।

भारतेंदुयुग में कुछ प्राचीन ढ़ंग के एकांकी नाटकों की रचना हुई । 'प्रेमयोगिनी', 'भारत-दुर्दशा', 'नीलदेवी' तथा 'माधुरी' भारतेंदुजी की श्रेष्ठ मौलिक एकांकी - कृतियाँ हैं । भारतेंदु-मंडल के नाटककारों में लाला श्रीनिवासदास, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्‌ट, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास आदि श्रेष्ठ एकांकीकार हैं ।

द्विवेदी-युग में नाटकों की विकासधारा अवरूद्ध रहने के कारण अपरिपक्व एकांकियों की रचना हुई । पाश्चात्य एकांकी-कला से प्रभावित होने पर भी इस युग

के एकांकीकारों की कृतियों में कला का पूर्ण अभाव है । सुदर्शन, रामनरेश त्रिपाठी, बदरीनाथ तथा उग्रजी इस युग के उल्लेखनीय एकांकीकार हैं ।

प्रसाद-युग में प्रसादजी का 'एक घूँट' नामक एकांकी कला की दृष्टि से हिंदी का सर्वप्रथम एकांकी कहा जा सकता है । प्रसाद-युग के अन्य एकांकी-कलाकारों में उदयशंकर भट्ट, भुवनेश्वर प्रसाद, डॉ. रामकुमार वर्मा, जगदीशचंद्र माथुर तथा उपेंद्रनाथ 'अश्क विशेष प्रसिद्ध हैं ।

प्रसादोत्तर एकांकी -नाटकों को गति प्रदान करने में डॉ.वर्मा, सद्गुरूशरण अवस्थी तथा विष्णु प्रभाकर अधिक श्लाघनीय हैं । इस युग में भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र ने 'मावा', 'कठपुतलियाँ', तथा 'तांबे के कीड़े' नामक एकांकी लिखे । डॉ.रामकुमार वर्मा के एकांकी-संग्रह 'पृथ्वीराज की आँखें', 'रेश्मी टाई', 'चारूमित्रा' और 'विभूति' नाम से लिखे गए । सेठ गोविंददास ने भी राजनीतिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक विषयों को अपनाकर एकांकियों की रचना की । उदयशंकर भट्ट तथा उपेंद्रनाथ 'अश्क' के कई नवीन एकांकी इस युग में प्रकाश में आए । विष्णु प्रभाकर ने अनेक एकांकियों की रचना कर हिंदी नाट्य साहित्य की अभिवृद्धि की । 'बुझता दीपक' और 'त्रिपथगा' शीर्षक एकांकियों पर भगवतीचरण वर्मा को अच्छी ख्याति मिली । अज्ञेय का 'नए एकांकी' नामक एकांकी - संग्रह नवीन प्रयोगों से युक्त है ।

उपर्युक्त एकांकी-कलाकारों के अतिरिक्त डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल, विनोद रस्तोगी, सत्येंद्र शरत, विमल लूथरा, केदारनाथ मिश्र, जयनाथ नलिन और हंसकुमार तिवारी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी एकांकियों में सामाजिक चेतना का स्वर सर्वाधिक प्रबल एवं प्रधान रहा है । इस युग के एकांकीकारों ने नवीन युग की मुख्य और गौण सभी

स्थितियों और समस्याओं को नए युग के संदर्भ में चित्रित किया है । आर्थिक संकट, पूँजीपति और श्रमिक संघर्ष, नारी-जीवन की विविध समस्याएँ, मध्यवर्गीय व्यक्ति की स्थिति, ग्राम्य जीवन की समस्याएँ, अछूत और पिछड़े वर्ग की समस्या, राजनीतिक परिवर्तित स्थिति, जमींदारी उन्मूलन, विभाजन, राष्ट्रीय एकता, राज्यों का विलयीकरण, सरकारी कर्मचारियों की स्थिति और मनोवृत्ति, गाँधीवादी सिद्धांत, हिन्दू-मुस्लिम एकता आदि इन एकांकियों के प्रधान विषय रहे हैं । भगवतीचरण वर्मा के 'रूपया तुम्हें खा गया' आदि एकांकियों में पूँजीपति और मजदूरों के संघर्ष, पूँजीवादी संस्कृति के खोखलेपन आदि का मर्मस्पर्शी अंकन हुआ है । राजेंद्र रघुवंशी के 'पहेली', राजीव सक्सेना के 'नशा उतरा' आदि एकांकियों में मध्यवर्ग की अनिश्चित मानसिक स्थिति, बेकारी, अनैतिकता आदि का चित्रण है ।

नारी-जीवन से संबद्ध विविध समस्याएँ भी इस युग के एकांकीकारों का प्रधान विषय रही हैं । लक्ष्मीनारायण लाल के 'एक दिन', 'नई इमारतें', भारतभूषण के 'युग-युग', 'पाँच मिनट', उपेन्द्रनाथ अश्क के 'भँवर', 'अलग-अलग रास्ते', 'कैद', 'उड़ान', विष्णु प्रभाकर के 'लिपिस्टिक की मुस्कान' आदि एकांकियों में नारी-जीवन की विवशता, नारी की स्वच्छंदता और उत्तरदायित्वहीनता, फैशनपरस्ती, खोखली बौद्धिकता, पुराने और नए आदर्शों का संघर्ष आदि विभिन्न समस्याओं का यथार्थ चित्रण हुआ है । कुछ एकांकियों में फ्रॉयड के मनोविज्ञान को आधार बनाकर रूग्ण एवं स्वस्थ-दोनों प्रकार की मनोवृत्तियों का अंकन हुआ है । लक्ष्मीनारायण लाल के 'पर्वत के पीछे', 'सुंदर रस' आदि में पुराने और नए जीवन-मूल्यों का संघर्ष, व्यक्ति की वासना, उसके परिणाम आदि का कहीं सीधा और कहीं प्रतीकात्मक चित्रण किया गया है । उदयशंकर भट्ट के 'नया समाज', 'मयोपिया', विष्णु प्रभाकर के 'डाक्टर', 'युगसंधि', मार्कण्डेय के 'पत्थर और परछाई', चिरंजीत के 'दादी माँ जागी'

आदि एकांकियों में भी फ्रॉयड के मनोविश्लेषणशास्त्र के आधार पर नए युग की नई मनोवैज्ञानिक समस्याओं के विविध पक्षों का रूप प्रस्तुत किया गया है । ये सभी एकांकियाँ नागरिक मध्यवर्गीय जीवन से आबद्ध हैं ।

इस युग में **ग्राम्य जीवन** और उससे संबंधित समस्याओं, अछूत एवं पिछड़े वर्गों की स्थिति, पंचायतों के चुनाव, गाँवों में उभरती हुई नई चेतना, गाँवों में फैलते नागरिक जीवन का प्रभाव, अँग्रेजियत का प्रभाव आदि का कुछ एकांकीकारों ने आदर्शपरक और कुछ ने यथार्थपरक चित्रण किया है । इन एकांकियों में वृंदावनलाल वर्मा का 'लो भाई पंचो, लो', रामावतार चेतन का 'धरती की महक', लक्ष्मीनारायण लाल का 'अंधा कुआँ', भगवतीचरण वर्मा का 'चौपाल' आदि उल्लेखनीय हैं । नवीन राजनीतिक परिस्थिति, राजनीतिज्ञों, विभिन्न राजनीतिक दलों की आंतरिक स्थिति, स्वार्थपरता, रूढ़िवादिता, भ्रष्टाचार, सरकारी कर्मचारियों की स्थिति और मनोवृत्ति आदि पर मार्मिक, यथार्थवादी, व्यंग्यपूर्ण शैली में एकांकियों की रचना करनेवालों में वृंदावनलाल वर्मा, विष्णु प्रभाकर, विनोद रस्तोगी, गौरीशंकर मिश्र, लक्ष्मीनारायण लाल, सेठ गोविंददास, वीरेन्द्र वीर आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । आजकल एकांकी की विविध विधाओं का विकास हो रहा है, जिनमें निम्नलिखित विधाएँ प्रसिद्ध हैं -

30.3.1. पद्य-एकांकी

इन एकांकियों में गद्य के स्थान पर पद्य का प्रयोग होता है । सियाराम शरण गुप्त, आनंदीप्रसाद श्रीवास्तव तथा महेन्द्र भटनागर इस विधा के प्रवर्तक हैं । इनके अतिरिक्त केदारनाथ मिश्र का 'काल-दहन', गौरीशंकर मिश्र का 'राजा परीक्षित', हंसकुमार तिवारी का 'मिलन यामिनी', जमुनाप्रसाद गौड़ का 'स्पृहा की दीवार', दिनकर का 'मगध-महिमा', उषादेवी मित्रा का 'प्रथम छाया' आदि उत्कृष्ट पद्यात्मक एकांकी हैं ।

30.3.2. गीतिनाट्य

इसमें वैयक्तिकता के साथ-साथ भावातिरेक, चित्रोपमता तथा अभिनेयता का प्राधान्य होता है । प्रसादजी का 'करूणालय' हिन्दी का सर्वप्रथम गीतिनाट्य है । इसके पश्चात् मैथिलीशरण कृत 'अनघ', निराला का 'पंचवटी-प्रसंग' नामक गीति नाट्य प्राप्त हुए । आधुनिक गीतिनाट्य-लेखकों में भगवतीचरण वर्मा आरसीप्रसाद सिंह, केदारनाथ मिश्र, अनिल कुमार आदि उल्लेखनीय हैं ।

30.3.3. रेडियो नाटक

आधुनिक नाटकों में यह विधा अत्यधिक प्रचलित हुई । इसका कारण रेडियो का प्रचार एवं प्रसार है । स्वातंत्र्योत्तर युग में रेडियो नाटकों की कला में अपूर्व विकास हुआ । विभिन्न विषयों पर रेडियो नाटकों की रचना हुई । डॉ.दशरथ ओझा के अनुसार हिन्दी का सर्वप्रथम रेडियो नाटक 'राधा-कृष्ण' है । डॉ.रांमकुमार वर्मा ने अनेक रेडियो नाटक लिखे हैं, जिनमें 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया', 'चारूमित्रा', 'औरंगजेब की आखरी रात', आदि प्रमुख हैं । उपेन्द्रनाथ अश्क के 'सुबह-शाम', 'पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ', 'लक्ष्मी का स्वागत' आदि भी प्रचलित हैं । भगवतीचरण वर्मा का 'राख और चिनगारी', लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'अहल्या', 'अशोक वन', 'ताजमहल के आँसू', जगदीशचन्द्र माथुर के 'भोर का तारा', 'खंडहर' आदि प्रसिद्ध रेडियो नाटक हैं । अन्य रेडियो नाटककारों में उदयशंकर भट्ट, डॉ.सत्यप्रकाश सागर, स्वदेश कुमार, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव, रामचंद्र तिवारी आदि उल्लेखनीय हैं ।

रेडियो नाटकों के अतिरिक्त, रेडियो रूपकों की अन्य विधाएँ भी द्रष्टव्य हैं । आधुनिक युग में रेडियों रूपकों की जो विधाएँ प्रचलित हैं, वे हैं - संगीत रूपक,

फीचर (रूपांतर), फैंटसी (भावनाट्य), प्रहसन और झलकियाँ, स्वोक्ति नाटक (मोनोलॉग), रिपोर्ताज आदि ।

30.4. हिन्दी रंगमंच

भारतीय रंगमंच की परंपरा अत्यंत प्राचीन है । कहा जाता है कि जब इंद्र ने देवताओं के साथ ब्रह्म के पास जाकर प्रार्थना की कि उन्हें दृश्य तथा श्रव्य-दोनों से युक्त मनोरंजन का साधन चाहिए तो उन्होंने .ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर नाट्य वेद की रचना की । 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित अन्य पुराकथा के अनुसार सर्वप्रथम नाट्याभिनय इंद्रलोक में देवासुर-संग्राम में देवताओं के विजयोत्सव के समय हुआ । अतः रंगमंच की दृष्टि से 'ध्वज-महोत्सव' भारतीय सांस्कृतिक जीवन की प्रथम घटना है । इस अभिनय में भयानक युद्ध की चुनौती थी । इंद्र को रंगमंच का रक्षक माना गया । दूसरा अभिनय 'त्रिपुरदाह' का हुआ । यह प्रदर्शन ब्रह्म तथा भरत के सहयोग से भगवान् शंकर के सम्मुख हुआ । भरतमुनि के निर्देशन में अभिनीत होनेवाला तीसरा नाटक था 'लक्ष्मी स्वयंवर' । पतंजलि के महाभाष्य में 'कंसवध' व 'बालिवध' नामक दो नाटकों के अभिनय का प्रमाण मिलता है । वाल्मीकि रामायाण में भी नट, नाटक, नर्तक, संगीत आदि का उल्लेख है । महाभारत-काल में सभी वर्गों के लिए नाटक खेले जाते थे । नाटक एवं रंगमंच की पाश्चात्य परंपरा पर्याप्त समृद्ध एवं महत्वपूर्ण रही है । पाश्चात्य रंगमंच ने प्रायः सभी देशों के नाटककारों को दिशा प्रदान की है । भारतेंदु-युग से ही हिन्दी नाट्य साहित्य में पाश्चात्य-प्रभाव के संकेत मिलते हैं । आधुनिक काल में हिन्दी के अनेक रंगमंचीय आंदोलन पाश्चात्य जगत् की देन हैं ।

हिन्दी रंगमंच के दो रूप गोचर होते हैं -

1. लोकनाट्य साहित्य को प्रस्तुत करनेवाले रंगमंच और
2. साहित्य नाटकों को प्रस्तुत करनेवाले रंगमंच ।

30.4.1. लोकनाट्य साहित्य को प्रस्तुत करनेवाले रंगमंच

आधुनिक भारतीय नाटकों को संस्कृत-नाट्य से जोड़नेवाली मूल श्रृंखला विविध क्षत्रीय नाटकों की है । रंगमंचीय निरंतरता बनाए रखने के साथ-साथ ही ये नाट्य शैलियाँ विभिन्न आंचलिक क्षेत्रों को एक सूत्र में बाँधती हैं । भारत के विभिन्न क्षेत्रों में लगभग चौबीस प्रकार की नाट्य शैलियाँ उपलब्ध हैं - रामलीला, रासलीला, बंगाल में जात्रा, असम में अंकिया नाट, बिहार में अंकिया नाट और कीर्तनियाँ नाट तथा बिदेशिया, गुजरात में भवई, मध्यप्रदेश में मांच, राजस्थान में ख्याल तथा रम्मत, महाराष्ट्र में तमाशा, उत्तर प्रदेश, हरियाणा तथा पंजाब में नौटंकी और सांग, कश्मीर में भांडजशन, हिमाचलप्रदेश में करियाला, केरल में कूडियाट्टम और चविट्ट, तमिलनाडु में भागवतमेल, मैसूर में यक्षगान और आंध्रप्रदेश में कूचुपुडि । इनमें जात्रा लोक-रंगमंच का सर्वाधिक सशक्त एवं सुगठित रूप है, जिसने आधुनिक परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित एवं समृद्ध रूप ग्रहण करते हुए पर्याप्त परिष्करण प्राप्त किया है । मध्यकाल में प्रचलित विविध नाट्य-रूपों की प्रवृत्ति दो प्रकार की है - लौकिक तथा धार्मिक । धार्मिक लोकनाट्य की पाँच भिन्न शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं - राजस्थान में रासक, ब्रज में रासलीला, काशी तथा अयोध्या में रामलीला, मिथिला में कीर्तनियाँ नाट तथा असम में अंकिया नाट । रामलीला क अभिनय उत्तरी भारत के कोने-कोने में होता है । खुले आकाश के रंगमंच का यह एक सुंदर उदाहरण है । बंगाल, बिहार, उड़ीसा आदि राज्यों में जात्राओं का अधिक प्रचार है । मथुरा में रासलीलाओं का बहुत प्रचार है । उत्तरप्रदेश, हरियाणा, पंजाब आदि के विभिन्न भागों में कुछ अन्य पद्धतियाँ अत्यधिक प्रचलित हैं । नौटंकी, स्वांग, सांग, भगति, बहुरूपिया आदि रूप प्रचलित हैं । नौटंकी का स्वरूप अभी तक संगीतपरक है, पर वर्तमान काल में इस पर सिनेमा आदि का प्रभाव बढ़ा है । स्वांग का एक रूप भाँडों का तमाशा है । यह एक प्रकार का प्रहसन है । राजस्थान में गुजरात के भवई से

मिलता-जुलता एक अन्य नाट्यरूप प्रचलित है - बोरा-बोरी । अन्य प्रमुख लोकनाट्य रूपों में अवध के सफेड़ा, छतीसगढ़ के नाचा, बिहार के बिदेसिया आदि का विशेष महत्व है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि लोक-रंगमंच की निरंतर प्रवाहित जीवंतता का रहस्य उसमें निहित नाट्य सृजन एवं रंगकर्म की वे शाश्वत पद्धतियाँ, रूढ़ियाँ तथा मान्यताएँ हैं, जो जन-जीवन में धुली-मिली हैं ।

30.4.2. साहित्यिक नाटकों को प्रस्तुत करनेवाले रंगमंच

हिंदी के साहित्यिक रंगमंच की स्थापना का श्रेय भारतेंदु हरिश्चंद्रजी को है । आधुनिक काल के हिंदी रंगमंच को हम ऐतिहासिक दृष्टि से निम्नलिखित कालों में विभक्त कर सकते हैं -

1. भारतेंदु-पूर्व पारसी-हिंदी रंगमंच
2. भारतेंदुयुगीन रंगमंच
3. द्विवेदीकालीन रंगमंच
4. प्रसादयुगीन रंगमंच
5. प्रसादोत्तर रंगमंच
6. समसामयिक रंगमंच

भारतेंदु-पूर्व पारसी-हिन्दी रंगमंच - अँग्रेजी रंगमंच से प्रभावित एवं आकृष्ट होकर कुछ पारसियों ने भारत में नाट्य मंड़लियों की स्थापना की । सर्वप्रथम पेस्टनजी और फरोमजी ने 'ओरिजनल थियेटर' की स्थापना की । कंपनी ने मुंशी मदारीलाल से 'इंदरसभा' नामक एक नाटक लिखवाया और प्रस्तुत किया । अन्य लेखकों में मोहम्मद मियाँ रौनक तथा हुसैन मियाँ का स्थान प्रमुख है । कंपनी के प्रमुख अभिनेता थे - खुर्शीदजी, कावसजी खटाऊ, सोहराबजी, जहाँगीरजी तथा पारनिसजी । कालांतर में खुर्शीदजी बालीवाला ने विक्टोरिया थिएट्रिकल कंपनी तथा कावसजी खटाऊ ने एलफ्रेड कंपनी की स्थापना की । पारसी थिएटर के नाटक-लेखकों में मुंशी विनायक प्रसाद 'तालिब', मेहदी हसन अहसन, नारायण

प्रसाद 'बेताब', पं. राधेश्याम कथावाचक, आगाहश्र कश्मीरी, कृष्णचंद्र 'जेबा', ज्वालाप्रसाद 'बर्क', हुसैन मियाँ 'जरीफ', हाफिज़ मुहम्मद आदि का नाम प्रतिनिधि कलाकारों के रूप में लिया जा सकता है । पारसी-हिंदी नाटकों के कथानक पौराणिक-ऐतिहासिक प्रसिद्ध चरित्रों, दंतकथाओं, आख्यान-कथाओं आदि पर आधृत होते थे । इनकी प्रवृत्ति रोमानी, शौर्यपरक तथा त्याग-बलिदानपरक उपदेश, शिक्षा आदि से परिपूर्ण तथा पुनरूत्थानवादी होती थी । 'लैला मजनू', ' शीरी फरहाद', 'रूस्तम ओ सोहराब', 'यहूदी की लड़की', आँख का नशा', 'भूल-भुलैया' आदि जैसी प्रेमकथाओं पर लिखे गए नाटक काफी लोकप्रिय हुए । नारायण प्रसाद 'बेताब' और राधेश्याम कथावाचक ने अनेक पौराणिक नाटक लिखे । रंगमंच पर शौर्य, साहसिकता, आश्चर्यमूलक चमत्कार आदि की स्थितियाँ पैदा करना पारसी रंगमंच की व्यावसायिक सफलता की कुंजी है । भावुकतापूर्ण सपाट कथानक को सजाने के लिए ही तरह-तरह के मनोहारी दृश्यों की योजना की जाती थी । नाटक के बीच-बीच में कई स्थलों पर नृत्य तथा चित्रवत् झाँकी प्रस्तुत करना नाटक-लेखक के कमाल की कसौटी थी । कथा में चटपटे गीत, फड़कते हुए संवाद तथा स्थान-स्थान पर शेर फिट करते उसे मनोरंजक बनाया जाता था । पारसी रंगमंच के ख्यातिप्राप्त-कलाकार थे - पृथ्वीराज कपूर, आगा अहमद, रहीम बख्श, सोहराबजी ओग्रा, मास्टर भगवानदास, मास्टर नारायण भाई, मास्टर फिदा हुसैन, मास्टर फूलचंद, मास्टर नैनूराम, मोहनलाल, कन्हैयालाल पवार, मास्टर खेमराज, मिस गौहर, शरीफा,पेंशस कपूर, बेगम अख्तर, जहाँआरा बेगम, रोशनआरा, सुशीला बाई, सरस्वती देवी, मिस मेरी फेनटन आदि । पारसी रंगमंच ने सबसे बड़ा योगदान हिंदी भाषियों को अपनी परंपरा की ओर आकृष्ट कराने में दिया । इसका महत्व इस बात में है कि इसने हिंदी नाट्य परंपरा को जीवंत रखा ।

भारतेंदुयुगीन रंगमंच - हिन्दी के साहित्यक रंगमंच की स्थापना का श्रेय भारतेंदु हिरश्चंद्र को है । उन्होंने पारसी रंगमंच के हाथों हिंदी के उच्चकोटि के नाटकों की दुर्दशा देखकर परिमार्जित रूचि के अनुकूल नाट्यमंडली का निर्माण किया । एक बार भारतेंदुजी डॉ.थीबो को लेकर शकुंतला का अभिनय देखने के लिए 'नाचघर' में गए । वहीं जब उन्होंने धीरोदत्त नायक दुष्यंत को कमर पर हाथ रखकर मटक-मटककर नाचते और 'पतली कमर बल खाय' गाते देखा तथा भारतीय नाटकों की महान् नायिका शकुंतला को उसी के अनुकूल अभिनय करते देखा तो भारतेंदुजी, डॉ.थीबो, बाबू प्रमदादास आदि नाचघर छोड़कर उठ आए । भारतेंदु की नाट्यमंड़ली को प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनाथ भट्ट, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी आदि ने भरपूर सहयोग दिया । इस नाट्यमंडली ने भारतेंदु तथा उनके मंडल के नाटककारों के नाटकों का सफल अभिनय किया । भारतेंदु ने जिस रंगमंच की स्थापना की थी, वह बहुत कुछ बँगला रंगमंच से प्रभावित था । भारतेंदु-रंगमंच ने हिंदी समाज में एक नई चेतना पैदा की, जिसके परिणामस्वरूप कई बड़े नगरों में साहित्यिक अभिरूचि के हिंदी रंगमंचों का निर्माण हुआ । भारतेंदुयुगीन सभी नाटककारों की मूल दृष्टि रंगमंच पर टिकी है । सुखांत एवं दुःखांत दोनों प्रकार का नाट्य सर्जन, इस काल में हुआ । इन लोगों ने बँगला-नाटकों के अनुवादों का भी मंचन किया ।

द्विवेदीकालीन रंगमंच - द्विवेदी-युग में नाटक के क्षेत्र में निष्क्रियता फैलने लगी । भारतेंदुजी के प्रयास से जिस नाटकीय रंगमंच की स्थापना हुई थी, वह शिथिल पड़ गया । इसका परिणाम यह हुआ कि पारसी रंगमंच को पुनर्विकास का अच्छा अवसर मिल गया । पारसी रंगमंच के लिए पहले की अपेक्षा अब अच्छे नाटक लिखे जाने लगे । भारतेंदु की अल्पायु में मृत्यु का सबसे घातक प्रभाव हिंदी नाटक

और रंगमंच पर पड़ा । उसके बाद नाटक के क्षेत्र में वैसी उन्नति नहीं दिखाई पड़ी । इतना सब होने पर भी द्विवेदी-युग नाट्य साहित्य एवं रंगमंच की दृष्टि से पूर्णतया महत्वहीन नहीं है । इसी समय बँगला से द्विजेंद्रलाल राय तथा रवींद्रनाथ के अनेक नाटकों के अनुवाद किए गए । इन नाट्यानुवादों का प्रभाव हिंदी रंगमंच पर पर्याप्त दूरगामी रहा है । इसी काल में माखनलाल चतुर्वेदी तथा पंडित रामनरेश त्रिपाठी के कई नाटकों का अभिनय सफलतापूर्वक किया गया । द्विवेदी-युग का योगदान नाट्यरचना के क्षेत्र में न होकर नाट्यप्रस्तुति के क्षेत्र में अधिक है । इस काल की सबसे बड़ी देन के रूप में पंडित माधवप्रसाद शुक्ल जैसे प्रतिभाशाली उत्साही अभिनेता, निर्देशक तथा लेखक का नाम उल्लेखनीय है ।

प्रसादयुगीन रंगमंच - प्रसाद-युग में आकर जनता की साहित्यिक अभिरूचि में निश्चय ही बड़ा परिष्कार हुआ । प्रसादजी के मन में नवीन नाट्य शैली एवं रंगमंच की खोज की प्रेरणा बलवती रही है, यद्यपि वे नाटकों के लिए अभिनेयता को आवश्यक नहीं मानते थे । हिंदी में साहित्यिक नाटकों के घोर संकटकाल में पारसी नाटक के दोले में झूलते हुए नाटक को प्रसाद ने स्थिर साहित्यिक रूप, सक्षम भाषा-शैली, सार्थक जीवनानुभूती, संपन्न वस्तु एवं शिल्प तथा नवीन रंगमचीय दिशा तथा दृष्टि दी है । रंगमंचीय संकट के उस समय में विद्रोह का स्वर उठाते हुए प्रसाद ने नवीन सार्थक रंगमंच की खोज आरम्भ की । 'विशाख' से 'ध्रुवस्वामिनी' तक की विकास-यात्रा को ध्यान से देखने पर स्पष्ट होता है कि किस प्रकार प्रसादजी नाट्य रचना में उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर हो रहे थे । प्रारंभिक नाटकों की तुलना में उनके 'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त' तथा 'ध्रुवस्वामिनी' में नाट्य-शिल्पगत प्रौढ़ता द्रष्ठव्य है ।

प्रसादोत्तर रंगमंच - नाट्य रचना के क्षेत्र में प्रसाद के समकालीन लेखकों

का योगदान प्रसाद की अपेक्षा बहुत ही कम रहा है । कुछ लोगों ने तो नाट्य रचना को शौकिया अपनाया तथा एक-दो नाटकों की रचना के बाद इस विद्या से मुकर गए । फिर भी उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविंददास, गोविंदवल्लभ पंत, लक्ष्मीनारायण मिश्रा, हरिकृष्ण 'प्रेमी', वृंदावनलाल वर्मा आदि के प्रयास अपेक्षाकृत उल्लेखनीय हैं । इनके नाटक केवल लिखे गए और प्रकाशित हुए । ये किसी भी रंगमंचीय परंपरा से जुडे न थे । चौथे दशक के अंतिम चरण से हिंदी रंगमंच के क्षेत्र में प्रकाश की किरण दिखाई देती है । इसी समय 'पृथ्वी थिएटर' के साथ हिंदी के व्यावसायिक रंगमंच ने पहली करवट ली । फिल्मी जगत् की प्रसिद्ध हस्ती पृथ्वीराज कपूर ने नाटक कंपनी खोलकर देश के प्रायः सभी बड़े शहरों में नाटक खेले । इस परिवर्तित रंगमंचीय चेतना की सर्वप्रथम अभिव्यक्ति उपेंद्रनाथ 'अश्क' के नाटकों में मिलती है । उन्हीं के नाटकों से हिंदी नाटक यथार्थवादी रंगमंच से जुड़ा । अश्क के प्रायः सभी नाटक अभिनेयता की शर्त पूरी करते हैं । जगदीशचंद्र माथुर को नाट्य क्षेत्र में अपूर्व सफलता प्राप्त हुई । नाटक में कलात्मक साहित्यिकता और रंगमंचीयता पर इनका ध्यान सर्वाधिक रहा । 'कोणार्क' के प्रकाशान से हिंदी नाट्यचेतना को नई दिशा और संभावनाओं के दर्शन हुए । माथुरजी की दूसरी कृति 'शारदीया' कोणार्क की तुलना में दुर्बल है । 'पहल राजा' में रंगमंचीय संभावनाएँ तथा नाटकीय सार्थकता बहुत उभर नहीं सकी है । माथुरजी के महत्वपूर्ण सुझावों के परिणामस्वरूप विभिन्न शहरों में रवींद्र-रंगशालाओं का निर्माण हुआ तथा अनेक नाट्य कंपनियाँ सरकार के अनुदान से काम करने लगीं । 'संगीत-नाटक अकादमी' को इस दिशा में निर्देश दिए गए कि वह हिंदी के प्राचीन तथा नवीन नाटकों पर विशेष ध्यान दे तथा ऐसे अभिनेता और निर्देशक सामने लाए, जो नाटक और जनता के बीच जीवंत संपर्क स्थापित कर सकें ।

समसामयिक रंगमंच - हिंदी साहित्य का छठा दशक हिंदी नाट्य जगत् में अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण रहा है । इसी समय धर्मवीर भारती का काव्य-रंगमंचीय नाटक 'अंधा युग' प्रकशित हुआ । इसके प्रकाशन से सिद्ध हो गया कि काव्य और नाटक का अन्योन्याश्रित संबंध है । इब्राहिम अल्काजी ने इसका मंचन दिल्ली के पुराने किले के खंडहरों की पृष्ठभूमि में मुक्ताकाशी रंगमंच पर किया । नई नाट्य संभावनाओं के कारण 'अंधा युग' नाटक रंगमंच के बीच दोहरे और जटिल संबंध में निहित भाषागत दृष्टियों तथा अभिनयात्मिका वृत्ति से अनेक उपलब्धियाँ प्रस्तावित करता है । दुष्यंत कुमार का 'एक कंठ विषपायी' नवीन नाट्यधारा का उल्लेखनीय काव्यनाटक है, पर 'अंधा युग' से आगे बढ़ नहीं पाता । कारण, इसके पात्र मूलकथ्य और रंग-संभावनाओं को धूमिल बनाते हैं । अज्ञेय का नाटक 'उत्तर प्रियदर्शी' पुराणकथा पर आधृत है । इस नाटक का मूल स्वर लोकधर्मी न होकर विशुद्ध नाट्यधर्मी है । अशोक की तरह आज का व्यक्ति भी यंत्रणा भोग रहा है । नरेश मेहता का 'सुबह के घंटे' व्यक्तित्व की संपूर्णता का चिंतन है । इस नाटक में रंगमंचीय संभावनाएँ अधिक नहीं हैं । लक्ष्मीकांत वर्मा का नाटक 'आदमी का जहर' पूर्णकालिक नाटक और एकांकी के बीच की स्थिति है । इस प्रकार यह नाटक में नाटक है तथा व्यंग्य के माध्यम से नाटककार शब्दों की नाट्य संभावनाएँ पर्त-दर-पर्त खोलता रहता है । नवीन नाट्य आंदोलन में मोहन राकेश सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । उनके 'आषाढ़ का एक दिन' के प्रदर्शन के लिए कलकत्ता की 'अनामिका कला-संगम' को पुरस्कृत किया गया । इस नाटक का मंचन अनेक बार हो चुका है । मोहन राकेश के अन्य दो नाटक 'लहरों के राजहंस' और 'आधे-अधूरे' भी रंगमंचीय क्रान्ति के अधिकारी हैं । सातवें दशक के काव्य-नाटकों में दिनकर की 'उर्वशी' अत्यधिक महत्वपूर्ण है । कवि ने रंग-निर्देशों की योजना भी की है । नए रंगमंचीय आंदोलनों में लक्ष्मीनारायण लाल, विष्णु प्रभाकर, विनोद रस्तोगी,

नरेश मेहता, चंद्रगुप्त विद्यालंकार आदि के नाम काफी चर्चित रहे हैं । लक्ष्मीनारायण लाल ने नाट्य लेखन, मूल्यांकन, निर्देशन, अभिनय, सभी क्षेत्रों में हिंदी रंगमंच की सेवा की है । उन्होंने 'अन्धा कुआ', 'मादा कैक्टस', 'तोता-मैना', 'रातरानी' आदि अनेक नाटकों की रचना की है । उनके सर्वाधिक सफल नाटक 'दर्पण' और 'मिस्टर अभिमन्यू' हैं । विष्णु प्रभाकर का नाटक 'डाक्टर' नए रंगमंचीय आन्दोलन का सार्थक प्रतीक है । स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में नेहरू-युग की आशा-निराशा अनेक नाटकीय मोडों के साथ व्यक्त हैं । तत्कालीन नाटककारों में डॉ.शिवप्रसाद सिंह, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव, विमला रैना, चिरंजीत, खेतीशरण शर्मा, ज्ञानदेव अग्निहोत्री उल्लेखनीय हैं ।

1961 ई. में भारतीय नाट्यसंघ के तत्त्वावधान में आयोजित अखिल भारतीय नाट्य गोष्ठी की सिफारिश पर नए नाटककारों ने संस्कृत और लोकनाट्य की पद्धतियों का प्रयोग करके नए रंग-आंदोलन को विकसित करने का प्रयास आरंभ कर दिया । गिरीश करनाड़ ने 'हयवदन' में पारंपरिक लोकनाट्य यक्षगान के कुछ तत्त्वों को प्रयुक्त किया है । विजय तेंदुलकर ने महाराष्ट्र की तमाशा-शैली को तथा उत्पल दत्त ने बंगाल की जात्रा-शैली को अपने नाटकों में प्रयुक्त किया है । ज्ञानदेव अग्निहोत्री तथा हबीब तनवीर ने लोक-रंगमंच के सभी रचनात्मक रूपों को उभारने की चेष्टा की है । इधर विभिन्न निर्देशकों ने महत्वपूर्ण नाटकों का प्रदर्शन भिन्न-भिन्न भाषाओं या एक ही भाषा में अपनी-अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के अनुसार विभिन्न शैलियों में किया है ; जैसे - 'तुगलक' को अल्काजी ने उर्दू में, कारंत ने कन्नड़ में, देशपांड़े ने मराठी में, पद्मिनी ने अँग्रेजी में और श्यामानंद जालान ने बँगला में प्रस्तुत किया है । 'खामोश अदालत जारी है' का निर्देशन देशपांड़े ने मराठी में, सत्यदेव दुबे ने हिंदी में और शंभुमित्र ने बँगला में किया है । इसी

प्रकार 'एवम् इंद्रजीत' को श्यामानंद जालान, सत्यदेव दुबे तथा बादल सरकार ने निर्देशित किया । हिंदी के निर्देशक राजेंद्रनाथ ने बादल सरकार के कई नाटकों का अत्यंत समर्थ और कलात्मक निर्देशन किया है । सातवें दशक में हिंदी रंगमंच की कला स्वतंत्र रूप से विकसित हुई और जन-नाट्यमंच, थिएटर ग्रूप, लिटिल थिएटर ग्रूप आदि अनेक नाट्य केंद्रों ने प्रदर्शन की नवीन प्रवृत्तियाँ प्रस्तावित कीं । आज के अनेक कलाकार रंगमंचीय प्रगति की जीवंत तसवीर हैं । हिंदी रंगमंच अपने प्रगति-पथ पर तेजी से बढ़ रहा है । इसके विकास के मूल में कारंत, भानु भारती, रामगोपाल बजाज, राजेंद्रनाथ, ब्रजमोहन शाह, हबीब तनवीर, उषा गांगुली जैसे समर्थ नाट्य निर्देशक हैं । हिंदी रंगमंच आज नई प्रयोगधर्मिता को बढ़ावा दे रहा है ।

30.5. नुक्कड़ नाटक

प्रदर्शन की दृष्टि से आज का रंगमंच बहुआयामी बन गया है । इस समय दर्शकों को ध्यान में रखकर कथानक-संगठन के स्थान पर स्थिति विश्लेषण की कोशिश की जा रही है । नुक्कड़ नाटक सामाजिक समस्याओं को इस कदर प्रस्तुत करते हैं कि दर्शक आधुनिक जीवन की विसंगतियों तथा विद्रूपताओं से परिचित एवं सावधान हो जायँ और खुद को उनके शिकंजे से बचायें । आज संवेदना के साथ-साथ जीवन-दृष्टि के महत्व को भी आँका जा रहा है । नुक्कड़ नाटकों का सीधा संबंध 1917 ई. की सोवियत क्रांति के तत्काल बाद के वर्षों से जुड़ता है । यह लोगों की जनतांत्रिक भावना का स्वतः प्रेरित साधन और रोजमर्रा की घटनाओं की व्याख्या का एक प्रबल साधन बन गया । धीरे-धीरे राजनीतिक स्वरूप, परिवेश एवं प्रवृत्तिवाला नुक्कड़ नाटक विविध आंदोलनों का प्रचारक बन गया । अनेक देशों में उनके इतिहास की नाजुक घड़ियों में नुक्कड़ नाटकों का जन्म हुआ है । भारत में

नुक्कड़ नाटकों का आविर्भाव उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष में जनगण को खींच लाने के इप्टा के अभियान के माध्यम के रूप में हुआ । आजादी के बाद वह जनवादी शक्तियों के साथ जुड़ गया । भारत में इसकी परंपरा अति प्राचीन है । भारत में अधिकांश लोकनाट्यों में सामयिक संकेत और हास्य वृत्तांत होते थे । समकालीन भारतीय नुक्कड़ नाटक हमारे प्राचीन नाटकों और लोकनाट्यों के साथ ही पश्चिमी थियेटर से भी प्रभाव ग्रहण करता रहा है । अपने वर्तमान रूप में यह श्रमजीवी वर्ग की विशिष्ट आवश्यकताओं से उत्पन्न हुआ कलारूप है और यह बीसवीं सदी की उपज है । आज सैकड़ों शौकिया नुक्कड़ नाटक-दल सामने आ चुके हैं। रंगमंच की दृष्टि से नुक्कड़ नाटक का विशेष महत्व है । नुक्कड़ नाट्य विधा को सक्षम बनाने में स्वर्गीय सफदर हाशमी का अमूल्य योगदान है । उनके द्वारा लिखित, निर्देशित तथा अभिनीत नुक्कड़ नाटकों में 'हल्ला बोल', 'मशीन', 'गाँव से शहर तक', 'राजा का बाजा', 'अपहरण भाईचारे का' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । उन्होंने जन-नाट्य मंच (जनम) के गठन के बाद 25-30 से अधिक लोकप्रिय नुक्कड़ नाटकों की रचना की तथा उनके देशव्यापी प्रदर्शन भी किए । अन्य नुक्कड़ नाटककारों में श्रीमती मलयश्री राय, प्रसन्ना, हबीब तनवीर आदि का सराहनीय योगदान रहा है ।

30.6. समाहार

इस इकाई के अंतर्गत हिन्दी नाट्य साहित्य का संपूर्ण परिचय दिया गया है । इस गद्य-विधा का हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व है । यह विधा अत्यंत प्राचीन है । संपूर्ण नाट्य साहित्य को विविध युगों में विभक्त कर उसका अध्ययन किया जाता है । प्रसाद के आविर्भाव से हिन्दी नाट्य साहित्य को एक नयी दिशा तथा नयी शैली मिली । इसी समय इब्सन के सामाजिक या समस्या नाटक की शैली का अनुकरण करते हुए हिन्दी के अनेक नाटककार यथार्थमूलक नाटकों के लेखन की

ओर प्रवृत्त हुए । आगे चलकर हिन्दी नाटकों में वस्तुगत तथा शैली व शिल्पगत प्रयोग किए गए ।

30.7. बोध प्रश्न

1. हिन्दी नाट्य साहित्य के उद्‌भव और विकास पर लेख लिखिए ।
2. भारतेंदु के पूर्व हिन्दी नाटकों पर प्रकाश डालिए ।
3. भारतेंदु युगीन हिन्दी नाटकों का महत्व स्पष्ट कीजिए ।
4. द्विवेदीयुगीन नाटककारों की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए ।
5. प्रसादयुगीन हिन्दी नाटकों की महत्ता को समझाइए ।
6. प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य के विकास पर निबंध लिखिए ।
7. हिन्दी एकांकी की विकास-यात्रा पर प्रकाश डालिए ।
8. हिन्दी रंगमंच के इतिहास पर एक लेख लिखिए ।
9. नुक्कड़ नाटकों की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए ।

NOTES

NOTES

NOTES

NOTES

इकाई इक्तीस : गद्य साहित्य की अन्य विधाएँ (रेखाचित्र, संस्मरण आदि)

इकाई की रूपरेखा

31.0. उद्देश्य

31.1. प्रस्तावना

31.2. रेखाचित्र और संस्मरण

  31.2.1. रेखाचित्र

  31.2.2. संस्मरण

31.3. गद्य-काव्य

31.4. इन्टरव्यू-साहित्य

31.5. यात्रा-साहित्य

31.6. आत्मकथा

31.7. जीवनी-साहित्य

31.8. रिपोर्ताज

31.9. समाहार

31.10. बोधप्रश्न

31.0. उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हिन्दी गद्य-साहित्य की विभिन्न विधाओं की चर्चा की जा रही है, जिनके अध्ययन के उपरांत आप -

1. रेखाचित्र व संस्मरण विधा से परिचित होंगे ;
2. गद्य-काव्य के विकास से परिचित होंगे ;
3. इन्टरव्यू-साहित्य की समग्र जानकारी प्राप्त करेंगे ;
4. यात्रा-साहित्य की संपूर्ण जानकारी प्राप्त करेंगे ;
5. आत्मकथा-लेखन से अवगत होंगे ;
6. जीवनी-साहित्स से परिचित होंगे ;
7. रिपोर्ताज-विधा से परिचित होंगे ।

31.1. प्रस्तावना

कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध और आलोचना-हिन्दी-साहित्य की प्रधान विधाएँ मानी जाती हैं । इनके अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य के कुछ ऐसी विधाओं का प्रचलन रहा है, जो कम परिमाण में रचित होने पर भी साहित्यिक चर्चा का विषय रही हैं और जिनमें साहित्य का अत्यन्त उन्नत रूप मिलता है । उपयोगिता और महत्व की दृष्टि से इन्हें अन्य प्रमुख विधाओं की तुलना में, किसी भी रूप में, कम नहीं माना जा सकता । इनके लेखक भी साहित्य के मूर्धन्य कलाकार होते हैं । इनमें गद्य का परिष्कृत और विकासमान रूप प्रतिबिम्बित होता है । **रेखाचित्र, संस्मरण, इन्टरव्यू, गद्य-काव्य, आत्म-कथा एवं जीवनी, रिपोर्ताज तथा यात्रा-सम्बन्धी रचनाएँ** - हिन्दी की ऐसी विधाएँ हैं जिनका विवेचन हिन्दी-साहित्य के इतिहास की पूर्णता के लिए आवश्यक है । इसलिए यहाँ इनमें से प्रत्येक का संक्षिप्त विवेचन करने का प्रयत्न किया जा रहा है ।

31.2. रेखाचित्र और संस्मरण

यद्यपि इन दोनों को भिन्न और स्वतन्त्र विधाएँ माना जाता है, फिर भी इनमें

इतनी अधिक समानता है जो साहित्य की अन्य किन्हीं भी दो विधाओं में नहीं मिलती । इसीलिये यहाँ दोनों का एक साथ विवेचन करना अधिक संगत रहेगा । **'रेखाचित्र'** में किसी भी ऐसे व्यक्ति, दृश्य या वस्तु का चित्रण किया जाता है जिसकी स्मृति हमें प्रायः उद्वेलित करती रही है, चाहे उससे हमारा आत्मीय या निकट का सम्पर्क रहा हो अथवा न रहा हो । जो व्यक्ति या वस्तु अपनी विशिष्टताओं के कारण हमारे ऊपर अपनी गहरी छाप छोड़ जाती है, हम उसी का रेखाचित्र अंकित करने को उत्सुक हो उठते हैं । और जब हम किसी साधारण या विशिष्ट व्यक्ति से सम्बन्धित किसी संवेदनशील स्मृति को अंकित करने का प्रयत्न करते हैं तो उस रचना को **'संस्मरण'** कहने लगते हैं । संस्मरण का संबंध देश, काल और पात्र - तीनों से रहने के कारण, उसमें इन तीनों का ही वर्णन रहता है । परन्तु रेखाचित्र का सम्बन्ध देश और काल से प्रायः नहीं रहता । संस्मरण में रेखाचित्र की अपेक्षा आत्मनिष्ठता अधिक रहती है । संस्मरण-लेखक अपने सम्बन्ध में भी बहुत कुछ कहता चलता है ।

31.2.1. रेखाचित्र

हिन्दी में रेखाचित्र कम लिखे गए हैं । हिन्दी में इस नवीन विधा का उदय भी पाश्चात्य-साहित्य के प्रभावस्वरूप हुआ है । हिन्दी में रेखाचित्र का जनक शिकार-साहित्य के प्रसिद्ध लेखक **पं.श्रीराम शर्मा** को माना जाता है । उनके 'बोलती प्रतिमा' नामक संग्रह में संग्रहीत कुछ रचनाओं को रेखाचित्र माना जा सकता है । **महादेवी वर्मा** ने 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' नामक अपनी संस्मरणात्मक रचनाओं में बड़े सुन्दर रेखाचित्र अंकित किये हैं। वस्तुतः इन रचनाओं को विशुद्ध रूप से न तो रेखाचित्र ही माना जा सकता है और न संस्मरण ही । इनमें इन दोनों विधाओं का मिला-जुला रूप ही अधिक उभरा है । इनकी 'चीनी फेरी

वाला' नामक रचना को पं.बनारसीदास चतुर्वेदी हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ रेखाचित्र मानते हैं । **रामवृक्ष बेनीपुरी** हिन्दी के अत्यन्त सफल रेखाचित्रकार रहे हैं । 'लाल तारा', 'माटी की मूरतें', 'गेहूँ और गुलाब', 'मील के पत्थर' आदि संग्रहों में इनके अनेक सुन्दर रेखाचित्र संग्रहीत हैं । इनमें विषय और भावना के विविध रूप मिलते हैं । इनके अधिकांश रेखाचित्र प्रतीकात्मक हैं ।

प्रकाशचन्द्र गुप्त हिन्दी के रेखाचित्रकारों में अपना विशिष्ट और मौलिक स्थान रखते हैं । 'पुरानी स्मृतियाँ' और 'नए स्केच' में संग्रहीत इनके रेखाचित्रों में मानव के अतिरिक्त सड़क, नगर, मुहल्ला, वृक्ष, खंडहर, ताल, लैटर कौक्स, पेट्रोल आदि पर सुन्दर रेखाचित्र संग्रहीत हैं । इन्होंने पूर्ण आत्मीयता और कलापूर्ण ढंग से इनका वर्णन किया है । लेखक ने इन निर्जीव वस्तुओं में मान, अभिमान, ईर्ष्या-द्वेष, स्नेह, छल-कपट, घृणा-ग्लानि आदि मानवीय भावों का आरोप कर उन्हें मानव की सहानुभूति और प्यार का पात्र बना दिया है । गुप्तजी ने कुछ ऐसे रेखाचित्र भी लिखे हैं जिनमें निबंध और रिपोर्ताज के मिले-जुले रूप उभरे हैं । समष्टि रूप से इन सम्पूर्ण रचनाओं में लेखक की राजनीतिक चेतना, समाजवादी दृष्टिकोण, स्नेह, सहानुभूति, करूणा आदि का प्राधान्य रहा है ।

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी भी एक सफल रेखाचित्रकार हैं । परंतु उनके 'रेखाचित्र' नामक संग्रह में संग्रहीत रेखाचित्रों में 'संस्मरण' का रूप ही अधिक उभरा है । इनमें विशिष्ट महापुरूषों तथा निम्न-दलित वर्ग के कुछ लोगों के रेखाचित्र सम्मिलित हैं । उनकी लिखी 'बन्धुवर नवीन जी' जैसी रचनाओं को ही सफल रेखाचित्र माना जा सकता है, अन्य रचनाएँ संस्मरण ही हैं । **भगवत शरण उपाध्याय** ने 'वो दुनियाँ' नामक अपने संग्रह में अपने अमेरिका-भ्रमण से सम्बन्धित रेखाचित्र लिखे हैं जिनमें विभिन्न शक्तियों की बाह्य रूपरेखा के साथ ही उनकी चारित्रिक

विशिष्टताएँ भी स्पष्ट हो उठी हैं । **हवलदार त्रिपाठी 'सुहृदय'** ने ''राँची का 'दा सोड' प्रपात'' नामक अपने रेखाचित्र में प्रकृति-चित्रण के साथ उस प्रदेश में रहने वाली वन्य-जाति का सुन्दर अंकन किया है । इनके अतिरिक्त **बाबू वृन्दावनलाल वर्मा और सुरेन्द्रनाथ दीक्षित** ने भी कुछ सुन्दर रेखाचित्र लिखे हैं । **देवेन्द्र सत्यार्थी** के 'रेखाएँ बोल उठीं' में अनेक सुन्दर रेखाचित्र संग्रहीत हैं ।

'बिशाल भारत' के 'शहीद अंक' में विभिन्न लेखकों ने शहीदों के अनेक ऐसे सुन्दर रेखाचित्र लिखे थे जिनमें वर्णित व्यक्ति की बाह्यकृति, वेशभूषा और चारित्रिक विशिष्टताएँ कलात्मक मार्मिक ढंग से स्पष्ट हो उठी हैं । **सेठ गोविन्ददास** ने अपने समकालीन प्रसिद्ध राजनीतिक नेताओं, महापुरूषों, साहित्य-महारथियों और बिड़ला जैसे उद्योगपतियों आदि पर बहुत ही सुन्दर रेखाचित्र लिखे हैं जो उनके 'स्मृतिकण' आदि संग्रहों में संग्रहीत हैं । **पं.माखनलाल चतुर्वेदी, पं.कृष्णदेव प्रसाद गौढ़ 'बेढब-बनारसी', आचार्य चतुरसेन शास्त्री** ने भी अनेक व्यक्तियों से संबन्धित अच्छे, कलात्मक रेखाचित्र लिखे हैं । **चन्द्रमौलि बक्सी** के 'संन्यासी बाबा' और **रामप्रकाश कपूर** के 'अन्जो दीदी' नामक रेखाचित्रों में वर्णित व्यक्ति की मानसिक कुंठाओं और चारित्रिक विशिष्टताओं का अत्यन्त भावपूर्ण अंकन हुआ है । इनके अतिरिक्त **प्रेमनारायण टंडन, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, सत्यवती मलिक, रघुवीर सहाय, अविनाश, विद्या माथुर, राजेन्द्र कुशवाहा** आदि ने भी इस विद्या के विकास और समृद्धि में पर्याप्त योग प्रदान किया है । हिन्दी के प्रसिद्ध व्यंग्यकार **हरिशंकर परसाई** का लिखा हुआ एक रेखाचित्र-संग्रह प्रकाशित है - 'बोलती रेखाएँ' । इसमें संग्रहीत रेखाचित्रों को हिन्दी के श्रेष्ठ कोटि के और विशिष्ट रेखाचित्र माना जाता है । **महादेवी वर्मा** के रेखाचित्रों के उपरान्त 'बोलती रेखाएँ' के रूप में हिन्दी में पहली बार ऐसे रेखाचित्र पढ़ने को मिले हैं, जिनमें मनुष्य की दुर्दमनीय जिजीविषा

का प्रज्ज्वलित रूप अपने ज्वलन्त रूप में व्यक्त हो उठा है । इसके पात्र मानव की इसी अदम्य जीवनी-शक्ति का प्रतीक बन गए हैं । परन्तु समष्टि रूप से हिन्दी के रेखाचित्र-साहित्य को अधिक समृद्ध नहीं माना जा सकता ।

31.2.2. संस्मरण

'संस्मरण' का क्षेत्र 'रेखाचित्र' की अपेक्षा अधिक व्यापक और विस्तृत होता है । इसमें वर्णित व्यक्ति के साथ युग-जीवन भी वर्ण्य-विषय बन जाता है । अनेक प्रसिद्ध रेखाचित्रकारों ने सुन्दर, कलापूर्ण संस्मरण भी लिखे हैं । **महादेवी वर्मा** के 'स्मृति की रेखायें' तथा 'पथ के साथी' नामक संग्रहों में हिन्दी के सर्वोत्तम संस्मरण संग्रहीत हैं । उनके 'पथ के साथी' में संग्रहीत संस्मरण श्रेष्ठ कलात्मक संस्मरणों के अनुपम उदाहरण हैं । लेखिका का कवि-हृदय अपनी सम्पूर्ण भावुकता, कोमलता, करूणा, कल्पना और माधुर्य के साथ काव्य की सी चित्रोपम, लाक्षणिक, व्यंजक और अलंकारों से सशक्त एवं अलंकृत भाषा का माध्यम ग्रहण कर, इन संस्मरणों में मुखरित हो उठा है । इनमें उन्होंने प्रसाद, पन्त, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, सियारामशरण गुप्त आदि अपने साहित्यिक बन्धुओं के साहित्यिक व्यक्तित्व का उद्‌घाटन करते हुए, उनसे सम्बन्धित अपने सम्बन्धों और भावपूर्ण क्षणों का बहुत ही मार्मिक अंकन किया है । इनमें संस्मरण के साथ-साथ रेखाचित्र की विशेषताओं का समावेश होने के कारण इनके प्रभाव और मार्मिकता में आशातीत वृद्धि हुई है । महादेवीजी हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ रेखाचित्रकार के साथ ही सर्वश्रेष्ठ संस्मरण-लेखिका भी हैं ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री हिन्दी के एक मँजे हुए संस्मरण-लेखक रहे हैं । उन्होंने विभिन्न वर्गों के विशिष्ट एवं सामान्य-दोनों प्रकार के व्यक्तियों से सम्बन्धित अगणित संस्मरण लिखे हैं । उनके संस्मरणों का क्षेत्र लोकमान्य तिलक से लेकर

जवाहरलाल नेहरू तक राजनीति के क्षेत्र में, सरदार भगतसिंह आदि क्रान्तिकारियों का स्पर्श करता हुआ प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर शान्तिस्वरूप भटनागर को समेट अपने साहित्यिक बन्धुओं जैनेन्द्र आदि तक विस्तृत होता चला गया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने बाल्यकाल की घटनाओं से सम्बन्धित कुछ भावपूर्ण संस्मरण लिखे हैं । इन सम्पूर्ण संस्मरणों में उनका मानवतावादी स्वर ही सर्वत्र मुखरित हुआ है । ये संस्मरण इस बात के प्रमाण हैं कि शास्त्री जी अपने समकालीन युग-जीवन की विभिन्न गतिविधियों के साथ घनिष्ट रूप से सम्पर्कित रहे थे। ये संस्मरण इतने सुन्दर और मार्मिक हैं कि इनके माध्यम से शास्त्री जी अपने युगीन-जीवन का एक व्यापक यथार्थ रूप प्रस्तुत करने में पूर्ण समर्थ हैं । परन्तु दुःख इस बात का है कि हिन्दी साहित्य में शास्त्री जी के ये संस्मरण उपेक्षित से हि रहे हैं, उनकी अधिक न्यायपूर्ण चर्चा नहीं हुई है । यदि इन संस्मरणों का एक सुसम्पादित संग्रह प्रकाशित हो जाय तो उससे हिन्दी के संस्मरण-साहित्य की श्रीवृद्धि तो हागी ही, साथ ही इतिहासकार भी उसमें से नए तथ्य पा सकेंगे ।

पं.बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रसिद्ध और अत्यन्त सफल संस्मरण-लेखक माने जाते हैं । उनकी प्रसिद्धि का मूलाधार ये संस्मरण ही रहे हैं । उनके 'संस्मरण' नामक संग्रह में उनके लिखे 21 संस्मरण हैं । इनमें से अधिकांश साहित्यिक व्यक्तियों के ही संस्मरण हैं । **रामबृक्ष बेनीपुरी** ने अपने 'जंजीरें और दीवारें' नामक संग्रह में अपने जेल-जीवन के विविध मार्मिक अनुभूतिपूर्ण संस्मरण लिखें हैं जिनमें आह्लाद, विभोरता, विषाद, कटुता, सहानुभूति, करूणा, ममता आदि की विभिन्न मनःस्थितियों में अनेक घटनाओं, प्रसंगों और व्यक्तियों से सम्बन्धित संस्मरणों के सुन्दर रूप उभरे हैं ।

पं.किशारीदास वाजपेयी ने अपनी पुस्तक 'साहित्यिक जीवन के संस्मरण' में सन् 1919 से लेकर 1954 तक अपने जीवन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के संस्मरण लिखे हैं, जिनमें वाजपेयी जी के आत्म-चरित के साथ-साथ उस युग की साहित्यिक गतिविधियों पर भी सुन्दर प्रकाश पड़ता है । उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने 'ज्यादा अपनी, कम पराई' नामक अपनी कृति में एक प्रकार से संस्मरण शैली में अपनी जीवनी ही प्रस्तुत की है ।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' भी हिन्दी के मँजे हुए सफल संस्मरण लेखक माने जाते हैं । उनके 'जिन्दगी मुस्कुराई' नामक संग्रह में लगभग 43 अत्यन्त सुन्दर संस्मरण संग्रहीत हैं । यह संग्रह पर्याप्त प्रशंसा और चर्चा का अधिकारी रहा है । प्रभाकर जी के संस्मरणों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और बहुमुखी रहा है । प्रसिद्ध और सामान्य व्यक्तियों से लेकर विभिन्न प्रकार की मार्मिक घटनाएँ-उनका वर्ण्यविषय रही हैं । उनके कुछ संस्मरणों के शीर्षक बड़े विचित्र से हैं ; जैसे - 'उस बेवकूफ ने जब मुझे दाद दी', 'बोलना उनसे सीखिए जो पढ़े लिखे नहीं हैं', 'झाड़ देना भी एक कला है', आदि ।

उपर्युक्त लेखकों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रसिद्ध साहित्यकारों ने भी अनेक संस्मरण लिखे हैं ; जैसे - **भगवतीप्रसाद वाजपेयी** का 'महाप्राण निराला' ; **विनयमाहन शर्मा** का 'लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी' ; **देवेन्द्र सत्यार्थी** का 'बलराज साहनी' ; **जगदीशचन्द्र जैन** का 'चीन की दीवार' ; **राहुल जी** के 'स्वामी सत्यानन्द', किशोरीदास वाजपेयी' ; **डॉ.महादेव साहा** का 'सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या' ; **कुसुमाकर** का 'उग्र जी' ; **मोहनसिंह सेंगर** का 'मानवेन्द्र राय' ; **मणिका देवी** का 'उस्ताद अलाउद्दीन खाँ' आदि । **क्षेमचन्द 'सुमन'** के विभिन्न साहित्यकारों से संबंधित संस्मरण 'साहित्यकारों के संस्मरण' नामक संग्रह के रूप में प्रकाशित हैं । 'गहरी

'उभरी रेखाएँ' नामक संस्मरणों का एक संग्रह प्रकाशित है जिसमें हिन्दी के अनेक दिवंगत साहित्यमनीषियों के हिन्दी के अन्य शीर्षस्थानीय साहित्यकारों द्वारा लिखे गए संस्मरण संग्रहीत हैं । इसे हिन्दी का एक सुन्दर संस्मरण-ग्रन्थ माना जाता है ।

हिन्दी में उस समय अधिक संस्मरण लिखे जाते हैं - जब किसी प्रसिद्ध साहित्यकार या राजनेता का देहान्त हो जाता है । उस समय विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उससे सम्बन्धित संस्मरणों की बाढ़-सी आ जाती है । समष्टि रूप से हिन्दी में लिखा गया और लिखा जा रहा संस्मरण-साहित्य पर्याप्त विकसित और उन्नत माना जा सकता है ।

31.3. गद्य-काव्य

'गद्य-काव्य' हिन्दी साहित्य की एक सर्वथा स्वतन्त्र और मौलिक साहित्यिक विधा है । यह सुललित गद्य लिखने की एक ऐसी शैली है जिसके माध्यम से भावुकतापूर्ण क्षणों में उदय होने वाली विभिन्न भावनाओं और विचारों को कवित्त्व पूर्ण ढंग के साथ व्यक्त किया जाता है । कुछ आलोचकों ने हिन्दी-गद्यकाव्य को बँगाल से प्रभावित माना है । सम्भव है कुछ परवर्ती गद्यकाव्य-लेखकों पर रवीन्द्र की 'गीतांजलि' का प्रभाव रहा हो, परन्तु हिन्दी में गद्यकाव्य के दर्शन भारतेंदु की रचनाओं में ही हो जाते हैं । **भारतेंदु** हिन्दी के पहले गद्यकाव्य-लेखक रहे हैं । हिन्दी-गद्य में भावावेश से परिपूर्ण भावात्मक शैली के दर्शन सर्वप्रथम उन्हीं की रचनाओं में होते हैं । डॉ.कमलेश ने भारतेन्दु को हिन्दी का पहला गद्य-काव्यकार मानते हुए लिखा है - ".....हिन्दी-गद्य में भारतेंदु द्वारा जिस भावुकता का समावेश किया गया था और जिसने उनकी कृतियों में -चाहे वे उनके नाटक हों या समर्पण, चाहे निबन्ध हों या उनके द्वारा सम्पादित पत्रों की टिप्पणियाँ, कवित्त्व का समावेश किया, उसी ने गद्य-काव्य को जन्म दिया और उन्हीं के मण्डल द्वारा सुसज्जित

होकर उस रूप में आया जिसे सर्वश्री वियोगी हरि और चतुरसेन शास्त्री ने प्रस्तुत किया ।'' यह दूसरी बात है कि भारतेन्दु आदि के ऐसे मनोरम गद्यखण्ड न तो स्वयं उनके द्वारा और न उनके आलोचकों द्वारा ही 'गद्यकाव्य' की संज्ञा से विभूषित किए गए थे ।

भारतेन्दु के अनेक सहयोगियों - **गोविन्द नारायण मिश्र, प्रेमघन, ठाकुर जगमोहनसिंह** आदि की अनेक रचनाओं में भावुकतापूर्ण गद्य लिखने की यह शैली प्रकट हुई थी । परन्तु हिन्दी में स्वतन्त्र रूप में गद्यकाव्य लिखने का आरम्भ **बाबू ब्रजनन्दन सहाय** के 'सौन्दर्योपासक' तथा **जयशंकर प्रसाद** की पत्रिका 'इन्दु' द्वारा ही मानना चाहिये । इसी समय बँगाल के **चन्द्रशेखर मुखर्जी** के 'उद्भ्रान्त प्रेम' नामक ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद हुआ था । यह गद्यकाव्य का सुन्दर उदाहरण था । इसके प्रकाशन ने हिन्दी में गद्यकाव्य लिखने की प्रवृत्ति को उभारा और लोकप्रिय बनाया था । इससे प्रेरित होकर **राज़ा राधिकारमण प्रसाद सिंह** ने 'नवजीवन' या 'प्रेम लहरी' ; **लक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु'** ने 'वियोग' आदि सुन्दर गद्यकाव्य लिखे थे ।

इसी समय **पं.माखनलाल चतर्वेदी** अपने कवित्वमय गद्यखण्डों का एक नया रूप लेकर सामने आए जो 'प्रसाद' के एसे ही गद्यखण्डों से काफी मिलता-जुलता था । **प्रसाद** और **चतुर्वेदी जी** ने यद्यपि स्वतन्त्र रूप में गद्यकाव्य नहीं लिखे थे परन्तु उन्होंने इस क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि 'उद्भ्रान्त प्रेम' की अतिरंजित भावुकता को संयमित कर हिन्दी-गद्यकाव्य को पथभ्रष्ट होने से बचा लिया ।

हिन्दी-गद्यकाव्य के इतिहास में सन् 1915 का वर्ष सदैव स्मरणीय रहेगा ।

क्योंकि इसी वर्ष **रायकृष्णदास** का प्रथम गद्यकाव्य-संग्रह 'साधना' प्रकाशित हुआ था, जिसने साहित्य की इस नवीन विधा को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया था । इस ग्रंथ में रहस्यवादी लाक्षणिक अभिव्यक्ति और शैलीगत सरलता के सर्वप्रथम दर्शन हुए । इसी समय गद्यकाव्य की दो अन्य उल्लेखनीय कृतियाँ प्रकाशित हुई थीं जिनमें 'साधना' से भिन्न पथ का अनुकरण किया गया था और जो भारतेंदु की भावावेशमयी शैली के अधिक अनुरूप तथा स्वतन्त्र गद्य-खण्डों के रूप में था । ये कृतियाँ थीं '**वियोग हरी** की 'तरंगिणि' और **चतुरसेन शास्त्री** की 'अन्तस्तल' । वस्तुतः हिन्दी गद्यकाव्य का वास्तविक विकास 'साधना', 'तरंगिणी' और 'अन्तस्तल' से ही मानना चाहिये । इनके उपरान्त रायकृष्णदास के 'छाया पथ', 'प्रबाल' और 'पगला' नामक गद्यकाव्य-संग्रह प्रकाशित हुए । इन रचनाओं के प्रकाशन के साथ गद्यकाव्य एक स्वतन्त्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ ।

इनके उपरान्त सन् 1925 और 1930 के बीच में हिन्दी में अनेक गद्यकाव्य-संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें भक्ति, सेवा, प्रेम, राष्ट्रीयता आदि भावनाओं को प्राधान्य मिला और शैली वही पुरानी रही । **वियोगी हरि** के 'प्रार्थना', 'अन्तर्नाद' ; **हृदयनाथ पांडेय** के 'मनोव्यथा', 'मदोन्मत्त' ; **देवदूत विद्यार्थी** का 'कुमार हृदय का उच्छ्वास' ; **सद्गुरूशरण अवस्थी** का 'भ्रमित पथिक' ; **केशवलाल झा** का 'प्रलाप' ; **वृन्दावनलाल वर्मा** का 'प्रेम की हिलोर' **जगदीश झा विमल** का 'तरंगिणी' ; **मोहनलाल महतो वियोगी** का 'धुँधला चित्र' और **भगवतीचरण वर्मा** का 'एक दिन' आदि गद्यकाव्य-संग्रह इसी काल की विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं । इस समय तक यद्यपि 'उद्भ्रान्त प्रेम' की शैली का काफी प्रभाव रहा था, परन्तु रायकृष्णदास की 'साधना' वाली शैली भी पर्याप्त प्रचार पा चुकी थी जिसका अनुकरण

शान्तिप्रसाद वर्मा के 'चित्रपट' और **चन्द्रशेखर सन्तोषी** के 'विप्लव की इच्छा' आदि संग्रहों में किया गया ।

सन् 1930 के पश्चात् हिन्दी-गद्यकाव्य विषय-वस्तु की दृष्टि से एक नया मोड़ लेता है । अनेक ऐसे गद्यकाव्य-संग्रह प्रकाश में आये जो कला, विषयवैविध्य एवं परिष्कृत भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । **वियोगी हरि** के 'ठंडे छींटे' में साम्प्रदायिक एकता, आत्म-परिष्कार की भावना आदि का चित्रण हुआ । **अज्ञेय** के 'अग्रदूत' में क्रान्तिकारी भावना और रोमाण्टिक तत्त्व उभरे । **नोखेलाल शर्मा** के 'मणिमाला' में नवीन भावावेश के दर्शन हुए, **तेजनारायण काक** के 'मदिरा' में 'गीतांजलि' का नवीन प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ । **रामकुमार वर्मा** का 'हिमहास' प्रकृति-दर्शन और देश के प्रति कर्त्तव्य-पालन की भावना को लेकर सामने आया । **रामेश्वरी देवी गोयल** का 'जीवन का सपना' सांकेतिक शैली में हृदय की पीड़ा को मुखरित कर गया ।

सन् 1937 में **दिनेशनन्दिनी डालमिया** के इस क्षेत्र में पदार्पण करने से हिन्दी-गद्यकाव्य एक नवोन्मेष के साथ आगे बढ़ा । उनके 'शबनम' नामक संग्रह में लौकिक प्रेम के रंगीन चित्र पहली बार दिखाई पड़े, जिसने गद्यगीत की धारा में एक नई हलचल मचा दी । उनके परवर्ती संग्रहों में से 'शारदीया' में व्यथा का उग्र रूप उभरा ; 'जाग्रत स्वप्त' में देश और समाज का चित्रण हुआ ; तथा 'वंशीरव' में प्रेम की तीव्रता ; 'उन्मन' में आध्यात्मिक स्पर्श ; और 'स्पन्दन' में मांसल सौन्दर्य के दर्शन हुए । हिन्दी में इनकी एक विशिष्ट और निराली गद्य-काव्य शैली रही है ।

इसी काल में **रावी** का 'पूजा', **भँवरमल सिंघी** का 'वेदना', और **नारायणदत्त बहुगुना** का 'विभावरी' - **रवीन्द्र** की 'गीतांजलि' के नवीन स्वर के साथ ही सामने

आए । **महाराजकुमार डॉ.रघुवीर सिंह** ने अपने 'शेष स्मृतियाँ' में ऐतिहासिकता को गद्यकाव्य का रूप पहना कर एक नई शैली को जन्म दिया । **अज्ञेय** ने अपनी 'चिन्ता' में फ्रॉयड़ के सिद्धान्तों का सहारा लिया, और **परमेश्वरीलाल गुप्त** 'बन्दी की कल्पना' में जेल जीवन का चित्रण करते रहे । **रावी** की 'शुभ्रा' में यौवन की अतृप्ति के तीखे स्वर गूँजे और **तेजनारायण काक** के 'निर्झर और पाषाण' में खलील जिब्रान की शैली का अनुकरण दिखाई पड़ा । **माखनलाल चतुर्वेदी** का 'साहित्य देवता' सुन्दर-सशक्त गद्यकाव्य का रूप धारण कर सामने आया जिसमें रहस्यात्मक शब्दावली में देशभक्ति और प्रेम की अनूठी व्यंजना कर एक नवीन धारा का प्रवर्तन किया गया । **चतुरसेन शास्त्री** का 'जवाहर' प्रशस्ति-गायन बनकर रह गया । इनके अतिरिक्त इस काल में अन्य अनेक गद्यकाव्य-लेखक सामने आए, जिनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं -

रघुवर नारायणसिंह ('हृदय तरंग'), **रामनारायणसिंह** ('मिलन पथ'), **बालकृष्ण बल्दुवा** ('अपने गीत') **ब्रह्मदेव** ('निशीथ', 'आँसू भरी धरती'), **विद्यावती भार्गव** ('श्रद्धांजलि'), **स्नेहलता शर्मा** ('विषाद'), **ब्यौहार राजेन्द्रसिंह** ('मौन के स्वर'), **महावीरशरण अग्रवाल** ('गुरूदेव'), **शकुन्तला कुमारी रेणुका** ('उन्मुक्ति') आदि ।

हिन्दी में मौलिक गद्यकाव्य-रचनाओं के अतिरिक्त अनेक अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं । उपर्युक्त रचनाओं के होते हुए भी हिन्दी गद्यकाव्य-साहित्य को समृद्ध नहीं माना जा सकता । यह विधा हिन्दी में अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकी ।

31.4. इन्टरव्यू-साहित्य

इन्टरव्यू को हिन्दी-साहित्य की नवीनतम विधा मानना चाहिए । इसका लेखक सामाजिक क्षेत्र के विशिष्ट पुरूषों से साक्षात्कार कर उनसे उनके जीवन,

रूचियों, कृतित्त्व, विचार, प्रेरणा-स्रोत आदि के सम्बन्ध में प्रश्न करता है और उनके दिए गए उत्तरों को लिपिबद्ध करता है । इस क्रिया को अंग्रेजी में इन्टरव्यू और हिन्दी में साक्षात्कार कहते हैं । लेखक अपने प्रश्न और उनके उत्तरों को अपनी टिप्पणियों सहित जब आकर्षक रूप में प्रस्तुत करता है, तब उसका वह कार्य साहित्यिक सौंदर्य से अभिमण्डित हो, साहित्य की एक स्वतन्त्र विधा बन जाता है । अंग्रेजी आदि विदेशी साहित्यों में यह विधा पर्याप्त उन्नत और समृद्ध है । वैसे तो हिन्दी में बहुत पहले से यदा-कदा इन्टरव्यू छपते चले आ रहे थे परन्तु उनका कोई एक विशिष्ट रूप विकसित नहीं हो पाया था । हिन्दी में, एक योजना बना, विभिन्न प्रसिद्ध व्यक्तियों से साक्षात्कार कर सर्वप्रथम इन्टरव्यू लिखने का श्रेय **डॉ.पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'**, को ही मिलना चाहिये । उनके लिखे इन्टरव्यू 'मैं इनसे मिला' शीर्षक से दो भागों में प्रकाशित हुए हैं । इनमें बाबू गुलाबराय, रामनरेश त्रिपाठी, निराला, सुदर्शन, धीरेन्द्र वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, महादेवी वर्मा, उदयशंकर भट्ट, जैनेन्द्र, यशपाल, नवीन, रायकृष्णदास, दिनेश नन्दिनी डालमिया, नगेन्द्र आदि से सम्बन्धित लगभग 22 इन्टरव्यू संग्रहीत हैं जिनमें इन साहित्यकारों के जीवन, रूचि, स्वभाव, रहन-सहन, प्रेरणा-स्रोत आदि का सरस भाषा शैली में वर्णन किया गया है । इनमें संस्मरण, रेखाचित्र आदि की विशेषतायें समाविष्ट हो उठी हैं । परन्तु इनके लेखन में एक यांत्रिक नीरसता के दर्शन होते हैं, जो विषय को अधिक प्रभावशाली नहीं बनने देती ।

इसके उपरान्त हिन्दी में ऐसा कोई सुनियोजित प्रयास नहीं हुआ । पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः इन्टरव्यू प्रकाशित होते रहते हैं । 'नई धारा' में कुछ दिनों तक 'हम इनसे मिले' शीर्षक स्तम्भ चलाया गया था जिसके अंतर्गत विभिन्न विशिष्ट व्यक्तियों से सम्बन्धित इन्टरव्यू प्रकाशित होते रहे थे ; जैसे - **डॉ.महेश नारायण** का

'राष्ट्रपति डॉ.राजेन्द्र प्रसाद', **नन्दकुमार कोहिनी** का 'जैनेन्द्र जी के साथ कुछ घन्टे' आदि । अब तक यह धारणा रही थी कि इन्टरव्यू विशिष्ट-प्रसिद्ध व्यक्तियों से ही सम्बन्धित होते हैं और होने चाहिए । परन्तु इधर इन्टरव्यू का एक नया अधिक सशक्त और आकर्षक रूप उभरा है । 'सारिका', 'धर्मयुग' आदि में ऐसे अनेक इन्टरव्यू प्रकाशित होते रहते हैं । इनकी रचना-प्रक्रिया इस प्रकार है - लेखक किसी एक विशिष्ट समस्या को लेकर किसी नगर के विभिन्न वर्गों के कुछ चुने हुए साधारण और विशिष्ट नागरिकों के पास जाता है और उस समस्या के सम्बन्ध में उनके विचार जानने का प्रयत्न करता है । वह अत्यन्त कौशल के साथ उनके व्यक्तिगत जीवन, रूचियों और विचारों के सम्बन्ध में भी कुछ तथ्य इकट्ठे कर लेता है । एक ही समस्या पर विभिन्न वर्गों और स्तरों के व्यक्तियों के विचारों का यह संग्रहीत रूप उस समस्या का रूप स्पष्ट कर देता है । ऐसे इन्टरव्यू की सबसे बड़ी विशेषता और आकर्षण पत्रकार की शैली में पात्रों की भाषा को यथावत् रूप में प्रस्तुत कर देना है । लेखक बीच-बीच में हास्य-व्यंग्य का सहारा लेता हुआ टिप्पणियाँ भी देता चलता है । इन्टरव्यू का यह रूप अत्यन्त रोचक होने के कारण पर्याप्त लोकप्रिय बन गया है । **मनोहर श्याम जोशी** द्वारा लिखे गए ऐसे इन्टरव्यू हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं । यह दूसरी बात है कि कुछ लोग इन्हें 'इन्टरव्यू' न मान निबन्ध मानें । हिन्दी में काफी इन्टरव्यू लिखे जा चुके हैं । कुछ लोग किसी विशिष्ट विषय या व्यक्ति का इन्टरव्यू लेने जाते हैं और उनसे प्रश्नोत्तर के रूप में प्राप्त हुए उनके विचारों को मनोरम शैली में लिपिबद्ध कर लेते हैं । कुछ लोगों ने हिन्दी के अनेक प्रसिद्ध साहित्यकारों के उनकी रचनाओं, वर्तमान साहित्यिक गतिविधि सम्बन्धी विचारों को इन्टरव्यू के रूप में प्रस्तुत किया है । यह पारस्परिक विचार-विमर्श का एक बहुत सुन्दर, सहज और प्रभावशाली उपयोगी साधन बन गया है ।

31.5. यात्रा-साहित्य

हिन्दी में यात्रा-साहित्य कम लिखा गया है । वस्तुतः इसे एक स्वतंत्र विधा न मान निबन्ध का ही एक विशिष्ट रूप मानना चाहिए । हिन्दी में यात्रा-साहित्य से सम्बन्धित एक ऐसी पुस्तक लिखी गई जो अपने ढंग की हिन्दी की एक मात्र पुस्तक है । वह है **राहुल सांकृत्यायन** की 'घुमक्कड़ शास्त्र' । इसमें राहुल जी ने यात्रा करने की कला का रोचक विवेचन करते हुए देश-विदेश में की गई अपनी अनेक यात्राओं का बहुत ही सरस वर्णन किया है । राहुल जी के अतिरिक्त हिन्दी के अन्य अनेक साहित्यकारों ने भी अपनी देश-विदेश की विभिन्न यात्राओं के रोचक वर्णन प्रस्तुत किए हैं ; जैसे - 'पैरों में पंख बाँध कर' **(रामबृक्ष बेनीपुरी)**, 'ठेले पर हिमालय' **(धर्मवीर भारती)**, 'नन्दन से लन्दन' **(ब्रज किशोर नारायण)**, 'सागर की लहरों पर' **(भगवतशरण उपाध्याय)**, 'दूसरी दुनिया' **(अक्षय कुमार जैन)**, 'रूस में 46 दिन' **(यशपाल जैन)**, 'अरे यायावर रहेगा याद', 'एक बूँद सहसा उछली' **(अज्ञेय)**, 'आखिरी चट्टान' **(मोहन राकेश)**, काश्मीर में 15 दिन' **(विट्ठलदास मोदी)**, 'सुबह के रंग', **(अमृतराय)**, 'ज्ञान की खोज में' **(डॉ.जगदीश शरण शर्मा)**, आदि । प्रसिद्ध भूतपूर्व संसत्सदस्य **रामेश्वर टाँटिया** ने अपने विदेश-भ्रमण के अनुभवों और संस्मरणों को बड़ी रोचक शैली में, छोटे-छोटे यात्रा-निबन्धों के रूप में प्रस्तुत किया है जो रोचक होने के साथ-साथ पर्याप्त ज्ञानवर्द्धक भी हैं ।

इनके अतिरिक्त **डॉ.रामविलास शर्मा, अमृतलाल नागर, राजेन्द्र यादव** ने अपनी दक्षिण-यात्रा से सम्बन्धित कुछ सुन्दर निबन्ध लिखे हैं । हमारे अनेक साहित्यकार विदेश-यात्रा से लौटकर प्रायः अपनी यात्राओं से सम्बन्धित संस्मरण लिखते रहते हैं । **दिनकर, नगेन्द्र, विष्णु प्रभाकर** आदि ने ऐसे अनेक सुन्दर निबन्ध लिखे हैं । आजकल भी पत्र-पत्रिकाओं में ऐसे निबन्ध प्रायः प्रकाशित होते रहते हैं ।

क्योंकि ये साहित्यकारों द्वारा लिखे जाते हैं, इसलिए उनमें स्थान-विशेष की संस्कृति, निवासियों के रहन-सहन, प्रकृति-सौन्दर्य और इन सबका लेखक पर पड़े प्रभाव और प्रतिक्रिया का बड़ा संवेदनशील वर्णन आ जाना नितान्त स्वाभाविक है, और यही इन्हें साहित्यिक रूप प्रदान कर देता है ।

31.6. आत्मकथा

हिन्दी में आत्मकथा (या, आत्मचरित्र) लिखने की प्रवृत्ति भी कम रही है । आत्मकथा उस साहित्य-रूप को कहते हैं जिसमें कोई लेखक अपने विगत जीवन का विवरण प्रस्तुत करता है । आत्मकथा, प्रधानतः दो उद्देश्यों से लिखी जाती है । एक, आत्म-निर्माण, आत्म-परीक्षण, अतीत की स्मृतियों का मोह या विश्व के व्यापक जटिल विस्तार में स्वयं को जानने या स्वयं की स्थिति का अन्वेषण करने के उद्देश्य से । दो, स्वयं के अनुभवों का लाभ अन्य लोग भी उठा सकें - इस उद्देश्य से । प्रथम में आत्म-परिष्कार की भावना प्रधान रहती है । आत्मकथा-लेखक ईमानदारी के साथ अपना जीवन, व्यक्तित्व, विचारों और भावनाओं के शुभाशुभ दोनों पक्षों का अंकन करता हुआ अपने विगत जीवन का सच्चा और पूरा लेखा-जोखा प्रस्तुत कर देता है ; जैसे - **महात्मा गांधी** ने 'सत्य के प्रयोग' नामक अपने ग्रन्थ में किया है । आत्मकथा से एक लाभ यह भी होता है कि हमें उसके माध्यम से आत्मकथा-लेखक के अनेक ऐसे तथ्यों का ज्ञान हो जाता है जिनके द्वारा हम उसकी विचारधारा और दृष्टिकोणों को अच्छी तरह से समझ सकते हैं । साथ ही आत्मकथा में समकालीन युग और सम्पर्क में आए विभिन्न व्यक्तियों से सम्बन्धित लाभदायक सामग्री उपलब्ध हो जाती है ।

हिन्दी में रचित आत्मकथा-साहित्य कम है । यद्यपि विभिन्न साहित्यकारों द्वारा रचित साहित्य में यत्र-तत्र आत्मकथात्मक संकेत मिल जाते हैं, परन्तु उन्हें

आत्मकथा नहीं माना जा सकता । आत्मकथा उसी कृति को माना जा सकता है जिसमें लेखक ने अपने सम्पूर्ण जीवन का या जीवन के किसी विशिष्ट अंश का क्रमबद्ध रूप से वर्णन किया हो । हिन्दी में इस रूप में लिखी गयी सबसे पहली आत्मकथा अठारहवीं सदी के जैन कवि **बनारसीदास** द्वारा रचित 'अर्ध कथा' मिलती है । इसके उपरान्त **भारतेंदु** ने 'कुछ आपबीति, कुछ जगबीति' शीर्षक के साथ अपनी आत्मकथा लिखना आरम्भ किया था, परन्तु उनकी असामयिक मृत्यु ने इस कार्य को पूरा नहीं होने दिया । इसमें उन्होंने अपने विगत जीवन और मुफ्तखोरे मुसाहिबों का अत्यन्त सजीव और रोचक वर्णन किया है । 'अर्ध कथा' के उपरान्त हिन्दी की दूसरी आत्मकथा **पं.अम्बिकादत्त व्यास** द्वारा सन् 1901 में 'निज वृतान्त' के नाम से लिखी गई थी । हिन्दी की आरम्भिक आत्मकथाओं में **स्वामी श्रद्धानन्द** द्वारा रचित 'कल्याण पथ का पथिक' नामक आत्मकथा महत्वपूर्ण मानी जाती है ।

कालान्तर में हिन्दी के अनेक साहित्यकारों ने अपनी-अपनी आत्मकथाएँ लिखी थीं ; जैसे - **बाबू श्यामसुन्दरदास** का 'मेरी आत्मकहानी', **राहुल सांकृत्यायन** की 'मेरी जीवन-यात्रा', **यशपाल** की 'सिंहावलोकन', **वियोगी हरि** की 'मेरा जीवन प्रवाह', **पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'** की 'अपनी खबर', **पं.किशोरीदास वाजपेयी** की 'साहित्यिक जीवन के संस्मरण', **छविनाथ पांडे** की 'अपनी बात', **उपेन्द्रनाथ अश्क** का 'ज्यादा अपनी कम पराई' आदि । **आचार्य चतुरसेन शास्त्री** ने भी अपनी आत्मकथा लिखना आरम्भ किया था । उपर्युक्त आत्मकथाओं में से कुछ लेखकों ने अपना सम्पूर्ण जीवन-वृत्तान्त प्रस्तुत किया है और कुछ ने संस्मरणों के रूप में अपने जीवन के कुछ खंडों को ही । **प्रेमचन्द** ने 'हंस' का 'आत्मकथा अंक' निकाला था जिसमें अनेक साहित्यकारों ने अपनी संक्षिप्त आत्मकथाएँ या उनके कुछ विशिष्ट अंश लिखे थे । **बाबू गुलाबराय** की 'मेरी असफलताएँ', तथा **सियारामशरण गुप्त** की

'झूठ-सच', 'बाल्य स्मृति' आदि भी आत्मकथात्मक रचनाएँ हैं । इनके अतिरिक्त अंग्रेजी में लिखी गई कुछ आत्मकथाओं के हिन्दी-अनुवाद बहुत प्रसिद्ध और लोकप्रिय रहे हैं ; जैसे - **महात्मा गांधी** की 'सत्य के प्रयोग' और **जवाहरलाल नेहरू** की 'मेरी कहानी' । **भवानीदयाल संन्यासी** की 'प्रवास की आत्मकथा' बहुत दिनों तक पर्याप्त चर्चा का विषय रही थी । इसमें उन्होंने अपनी आत्मकथा के माध्यम से प्रवासी भारतीयों की करूण दशा का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है । इन सम्पूर्ण आत्मकथाओं के रचयिता प्रसिद्ध और मँजे हुए साहित्यकार रहे हैं, इसलिए इनमें शैली-शिल्प और संवेदनीयता के कारण साहित्यिक सौन्दर्य निखर आया है । हमारे राजनेताओं द्वारा लिखी गई आत्मकथाओं में **डॉ.राजेन्द्रप्रसाद** द्वारा लिखी गई 'आत्मकथा' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । यह मूल रूप से हिन्दी में ही लिखी गई है और साहित्यिक सौन्दर्य से आपूरित है । इसमें आत्मकथा के साथ समस्त समकालीन महत्वपूर्ण घटनाओं, व्यक्तियों और आन्दोलनों का इतिहास आ गया है । हिन्दी के प्रसिद्ध कवि **हरिवंशराय बच्चन** ने अपनी आत्मकथा लिखी है - 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ, 'नीड़ का निर्माण' और 'प्रवास की डायरी' आदि । यह आत्मकथा सुन्दर, सशक्त गध का तो एक अत्यन्त सुन्दर नमूना है ही, आत्मकथा-लेखन के क्षेत्र में एक साहसपूर्ण और मौलिक प्रयास है । हिन्दी की यह विशिष्टता रही है कि इसके श्रेष्ठ कवि अत्यन्त मँजे हुए गद्य-लेखक भी रहे हैं । बच्चन की इस आत्मकथा में आत्म-स्वीकृति की साहसपूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है । साथ ही इससे उनके चिन्तन, चिन्तन के विकास की प्रक्रिया और उससे उद्‌भूत साहित्य-सर्जना का रूप भी स्पष्ट होता चलता है । हिन्दी में रचित आत्मकथा-साहित्य लघु परिमाण में होते हुए भी उसे साहित्य का अमहत्त्वपूर्ण या उपेक्षित अंग नहीं माना जा सकता । वह अपने इस लघु रूप में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण और समृद्ध है ।

31.7. जीवनी-साहित्य

जीवनी को जीवन-चरित, या जीवन-चरित्र भी कहते हैं । इसमें किसी लेखक द्वारा किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के जीवन का पूर्ण या आंशिक वर्णन प्रस्तुत किया जाता है । इसमें वर्णित-व्यक्ति के जीवन की स्थूल घटनाओं और चरित्र की विशिष्टताओं का अंकन होता है । इस प्रकार जीवनी में वर्णित-व्यक्ति अर्थात् चरित-नायक के अन्तर्बाह्य, दोनों ही पक्षों का वर्णन किया जाता है । किसी व्यक्ति की जीवनी पढ़ कर हम उसे एक व्यक्ति के रूप में जानने में समर्थ होते हैं । जीवनियाँ प्रेरणाप्रद होती हैं । उनके द्वारा वर्णित-व्यक्ति की उन चारित्रिक विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त होता है जिनके कारण वह विशिष्ट और माहन् बना था । हिन्दी का यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि हमारे महान् साहित्यकारों के प्रामाणिक जीवन-चरित आज भी अनुपलब्ध है । अपने प्राचीन साहित्यकारों के जीवन के सम्बन्ध में उनसे सम्बद्ध प्रचलित किम्वदन्तियों, उनके साहित्य में पाए जाने वाले एकाध आत्मकथात्क अंशों या अन्य कवियों द्वारा उनके सम्बन्ध में कही गई संक्षिप्त उक्तियों द्वारा ही थोड़ा-बहुत जान सके हैं । जीवनियाँ इसलिए आवश्यक हैं कि हम किसी भी साहित्यकार को पूर्ण रूप से तब तक नहीं समझ सकते, जब तक उस साहित्य को रचने की प्रेरणा देने वाले तत्त्वों का हमें ज्ञान न हो । और यह ज्ञान तभी सम्भव है जब हम उसके जीवन की विभिन्न घटनाओं, उसके सम्पर्क में आए विभिन्न व्यक्तियों, उसके अध्ययन और विचारों से पूर्णतः परिचित हों ।

किसी भी साहित्यकार के साहित्य को समझने के लिए उसका जीवन-वृत्तान्त जानना आवश्यक है । पाश्चात्य-जगत में तो आलोचना की एक ऐसी प्रणाली का प्रचार रहा है जिसे 'बायग्राफिकल क्रिटिसिज्म' अर्थात् 'जीवनवृत्तान्तीय आलोचना' कहते हैं । इस आलोचना-पद्धति के समर्थकों का यह मत है कि कृतिकार और

उसकी कृति में एक ऐसा अनिवार्य सम्बन्ध रहता है कि कृति मुख्यतः उसके जीवन और जीवन-दृष्टि को पूर्ण रूप से व्यक्त करती है । कृतिकार अपनी कृति में अपने जीवन के विकास और संघर्षों को व्यक्त करता चलता है । **निराला** की 'सरोज स्मृति' को हम पूरी तरह से नहीं समझ सकते, जब तक कि हमें यह न ज्ञात हो कि निराला ने वह कविता किन परिस्थितियों में लिखी थी ।

हिन्दी में जीवन-चरित लिखने की प्रथा नहीं रही थी । जिन प्राचीन कवियों ने इतिहास-प्रसिद्ध वीर नरेशों या अपने आश्रयदाताओं के सम्बन्ध में ग्रन्थ रचे थे, उन्हें जीवन-चरित नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह साहित्य अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों से भरा है । कवियों ने इतिहास के साथ अपनी कल्पना का भी प्रचुर प्रयोग किया है । जीवन-चरित्र में केवल ऐतिहासिक तथ्यों का ही वर्णन होता है, कल्पना से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता । इसी कारण प्राचीन रासो-ग्रन्थों को जीवन-चरित नहीं माना जा सकता । भक्तिकालीन विभिन्न वार्ताओं में विभिन्न प्राचीन और समकालीन कवियों के सम्बन्ध में जो थोड़ी-बहुत सामग्री मिलती है, वह भी अतिरंजनापूर्ण ही अधिक है । वस्तुतः हिन्दी में जीवनी-लेखन की प्रथा का आरम्भ भारतेन्दु के समय से ही हुआ है । **भारतेन्दु** ने 'चरितावली' आदि अपने ग्रन्थों में विभिन्न व्यक्तियों के छोटे-छोटे जीवन-चरित लिखे । सन् 1893 में **कार्तिक प्रसाद खत्री** ने मीराबाई का जीवन-चरित प्रस्तुत किया । इसके अतिरिक्त **राधाकृष्णदास** ने 'सूरदास', 'नागरीदास का जीवन-चरित्र', 'भारतेन्दु का जीवन-चरित्र' आदि जीवनियाँ लिखीं । **मुंशि देवीप्रसाद** ने बाबर, हुमायूँ, शेरशाह, अकबर, शाहजहाँ, राणा साँगा, प्रतापसिंह, मानसिंह, राजसिंह आदि बादशाहों और राजाओं की जीवनियों के साथ रहीम, सूरदास, बीरबल आदि की प्रामाणिक जीवनियाँ प्रस्तुत करने का श्लाघनीय प्रयत्न किया । वस्तुतः मुंशी देवीप्रसाद को ही उन्नीसवीं सदी का सर्वश्रेष्ठ

जीवन-चरित्र लेखक माना जाना चाहिए । इनके उपरान्त **बाबे बालमुकुन्द गुप्त** ने पं.प्रताप नारायण मिश्र का जीवन-चरित्र लिखा ।

कालान्तर में **महावीरप्रसाद द्विवेदी** आदि ने जीवन चरित लेखन की इस परम्परा को आगे बढ़ाया । विभिन्न लेखकों ने संसार के प्रसिद्ध महापुरूषों की जीवनियाँ लिखीं । हिन्दी के अनेक साहित्यकारों की भी छोटी-छोटी जीवनियाँ लिखी गईं । परन्तु इस क्षेत्र में कोई अधिक उल्लेखनीय या ठोस कार्य नहीं हो सका । **आनन्दप्रकाश जैन, डॉ.राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी** आदि ने डॉ.राजेन्द्रप्रसाद, डॉ.राधाकृष्णन्, लोकमान्य तिलक, जवाहरलाल नेहरू आदि की सुन्दर जीवनियाँ लिखीं ।

रांगेय राघव ने प्राचीन महापुरूषों और साहित्य-साधकों से सम्बन्धित औपन्यासिक जीवनियाँ लिखकर इस क्षेत्र में एक नया प्रयोग किया था । प्रेमचंद के सुपुत्र **अमृतराय** ने 'कलम का सिपाही' नामक प्रेमचंद की प्रामाणिक जीवनी लिखी है । इससे पूर्व प्रेमचन्द की पत्नी **शिवरानी देवी** प्रेमचन्द का छोटा-सा परन्तु आधिकारिक जीवन-चरित लिख चुकी थीं । **डॉ. रामविलास शर्मा** ने एक प्रामाणिक जीवनी लिखा है जो 'निराला की साहित्य-साधना' शीर्षक से प्रकाशित है । यह हिन्दी में लिखा गया सर्वश्रेष्ठ जीवन-चरित्र माना जा सकता है । इसमें बड़ी रोचक, औपन्यासिक-सी शैली में निराला के जीवन की प्रत्येक स्थूल और सूक्ष्म रेखा का अंकन करते हुए, उनके साहित्य के उन विशिष्ट कोणों और प्रभावों की जटिलताओं को स्पष्ट किया गया है, जो सामान्यतः बड़े रहस्यमय और उलझनपूर्ण से प्रतीत होते हैं । निराला के इस जीवन-चरित को पढ़कर निराला की साहित्य-साधना के रूप के रहस्य को समझ जा सकता है । इस दृष्टि से इस जीवन-चरित को हिन्दी की एक अविस्मरणीय रचना माना जा सकता है ।

31.8. रिपोर्ताज

इस विधा का सम्बन्ध मूल रूप से पत्रकारिता से है । वह एक प्रकार से विशिष्ट घटनाओं से सम्बन्धित समाचारों का ही रूप होता है । परन्तु सामान्य रूप से लिखे गए समाचार और रिपोर्ताज के रूप में लिखे गए समाचार में एक विशिष्ट और मौलिक अंतर होता है । 'रिपोर्ताज' फ्रांसीसी भाषा का शब्द है । इसका और अंग्रेजी शब्द 'रिपोर्ट' का गहरा सम्बन्ध है । 'रिपोर्ट' का अर्थ है - समाचार, सूचना आदि । इस 'रिपोर्ट' के कलात्मक, साहित्यिक रूप को ही 'रिपोर्ताज' कहते हैं । रिपोर्ट, रिपोर्ताज का रूप तभी धारण करती है जब वस्तुगत तथ्य को रेखाचित्र की सी शैली में प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है । रिपोर्ट के समान रिपोर्ताज का मूल आधार सत्य घटना होती है । इसलिए रिपोर्ताज कल्पना की सहायता से नहीं लिखा जा सकता । घटना-प्रधान होने के कारण इसमें कथा-तत्व रहता है । रिपोर्ताज लेखक सम्वाददाता और कलाकार की दुहरी जिम्मेदारी एक साथ निभाता है । किसी सम्वाददाता को कोई घटना जब गहरे रूप से प्रभावित करती है, तभी उसकी लेखनी से रिपोर्ताज का जन्म होता है । इसके लिए सम्वाददाता का साहित्यकार होना भी जरूरी है ।

रिपोर्ताज का इतिहास पुराना नहीं है । द्वितीय विश्वयुद्ध के समय ही गद्य की इस नवीन विधा का जन्म हुआ माना जाता है । उस समय यूरोप के कई प्रसिद्ध साहित्यकारों ने स्वयं युद्ध-क्षेत्र में जाकर, वहाँ से नए ढंग के समाचार भेजे थे । यही समाचार आगे चलकर 'रिपोर्ताज' के रूप में प्रसिद्ध हुए । प्रख्यात रूसी लेखक एलिया एहरनवर्ग के लिखे रिपोर्ताजों ने विश्व-प्रसिद्धि पायी थी । हिन्दी में रिपोर्ताज का जन्म सन् 1943 के बंगाल के भयंकर अकाल के समय हुआ माना जा सकता है । **डॉ.रांगेय राघव** उस समय स्वयं बंगाल गए थे और उन्होंने वहाँ रहकर

समाचार पत्रों को उस अकाल की भयानकता का चित्रण करते हुए जो समाचार भेजे थे, उन्होंने हिन्दी में गद्य की इस नई विधा को जन्म दिया था । उसके बाद कुछ अन्य साहित्यकारों ने भी इस दिशा में प्रयत्न किया था । **प्रकाशचन्द्र गुप्त, अमृतराय, प्रभाकर माचवे** आदि ने कुछ सुन्दर रिपोर्ताज लिखे हैं ।

आज़ादी के बाद देश में कई महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं थीं परन्तु रिपोर्ताज का कोई उन्नत रूप सामने नहीं आ पाया । चीन ने सन् 1962 में और पाकिस्तान ने 1965 में भारत पर आक्रमण किए, युद्ध हुए, फिर भी सुन्दर रिपोर्ताज देखने को नहीं मिल पाए । परन्तु सन् 1971 के दिसम्बर में हुए बँगला देश के स्वतन्त्रता-संग्राम और भारत पर पाकिस्तान के आक्रमण ने हिन्दी-रिपोर्ताज को एक ऐसा नया और चमकदार रूप प्रदान कर दिया है कि इस विधा का रूप बहुत उज्ज्वल दिखने लगा । यह युद्ध एक राष्ट्र की मुक्ति का युद्ध था जिसमें भारत की प्रतिष्ठा भी दाँव पर लगी हुई थी । इसलिए हिन्दी की पत्रकारिता से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध कई साहित्यकारों ने स्वयं युद्ध-क्षेत्र का भ्रमण कर अपने प्राणों को खतरे में डाल, उत्साह, मृत्यु-भय आदि का स्वयं अनुभव करते हुए जो समाचार प्रेषित किए थे, उन्होंने हिन्दी-रिपोर्ताज को पर्याप्त लोकप्रियता प्रदान कर उसे एक स्वतन्त्र साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है । इन लेखकों में 'धर्मयुग' सम्पादक, हिन्दी के प्रख्यात कवि और कथाकार **डॉ.धर्मवीर भारती** और **विष्णुकान्त शास्त्री** के रिपोर्ताज साहित्य की अमूल्य निधि माने जाते रहेंगे । डॉ. भारती द्वारा लिखे गए रिपोर्ताजों में उनका संवेदनशील भावुक कवि, कुशल कथाकार और स्वतन्त्रता सेनानियों तथा दूसरे देश की स्वतन्त्रता के लिए निस्वार्थ भाव से रणक्षेत्र में कूद पड़ने वाले सैनिकों-सेनानायकों के सच्चे उत्साह और त्याग की गहरे रूप से अनुभूति करने वाले एक विशाल हृदय और साहसी मानव के रूप में अभिन्न बन

साकार हो उठे हैं । ये रिपोर्ताज इतने सुन्दर हैं ये उन्हें हिन्दी साहित्य में सदैव अमर बनाए रखेंगे । इन रिपोर्ताजों को हिन्दी साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि और अमूल्य निधि माना जा सकता है ।

सन् 1971 के आरम्भ में साप्ताहिक 'दिनमान' में हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार **फणीश्वरनाथ रेणु** ने नेपाल में नेपाल कांग्रेस के सशस्त्र आन्दोलन से सम्बन्धित कुछ बहुत ही सुन्दर निबन्ध लिखे थे, जिनका रूप और शैली रिपोर्ताज जैसी ही थी । राजस्थान के नवयुवा साहित्यकार **मणि मधुकर** के राजस्थान से सम्बन्धित रिपोर्ताज प्रकाशित हुए हैं । इस गद्य-विधा के प्रति हिन्दी के नवयुवा साहित्यकारों की रूचि जागृत हुई है, जिससे भविष्य में और भी सुन्दर, मार्मिक और प्रभावोत्पादक रिपोर्ताज लिखे जाने की सम्भावना है । यह एक ऐसी विधा है जो किसी भी सामयिक घटना को महत्वपूर्ण और रोचक रूप प्रदान कर उसके प्रति जन-समाज का ध्यान अकर्षित करने की शक्ति रखती है ।

31.9. समाहार

साहित्य में आधुनिक विचार और बोध के परिणामस्वरूप गद्य का प्रचलन हुआ । आधुनिक युग में व्यक्ति अपनी निजी भावना और निजी अनुभवों की अभिव्यक्ति करने के लिए स्वतंत्र था । अनुभवों की विविधता ने ही आधुनिक साहित्य में विभिन्न विधाओं और विविध शैलियों को प्रस्तावित किया । रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, इंटरव्यू, रिपोर्ताज आदि विधाओं का संबंध कलाकार के व्यक्तिगत जीवन से है, परंतु संवेदना के स्पर्श के कारण वे व्यक्तिगत अनुभूतियाँ भी साहित्य की सृजनात्मक विधाओं के रूप में प्रस्तुत होने लगी हैं । इन विधाओं की विकास-यात्रा के साथ-साथ इनके उद्देश्य भी स्पष्ट होते जाते हैं ।

31.10. बोधप्रश्न

1. रेखाचित्र के संबंध में लेख लिखिए ।
2. रेखाचित्र और संस्मरण के अंतर को समझाइए ।
3. गद्य-काव्य के उदय और विकास-क्रम को बताइए ।
4. इन्टरव्यू-साहित्य पर प्रकाश डालिए ।
5. यात्रा-साहित्य की विकास-यात्रा को स्पष्ट कीजिए ।
6. हिन्दी में रचित आत्मकथा-साहित्य पर लेख लिखिए ।
7. जीवनी-साहित्य पर एक निबंध लिखिए ।
8. पत्रकारिता में रिपोर्ताज के महत्व को समझाइए ।
9. प्रमुख संस्मरण लेखकों का परिचय दीजिए ।

• • • • •

कोर्स - चार के लिए उपयोगी पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - त्रिभुवन सिंह
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य - डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
3. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ - डॉ.नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपतिचन्द्र गुप्त
5. हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास - रामप्रसाद मिश्र
6. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य - प्रो.मैनेजर पांडेय
7. तुलसीदास - डॉ.माताप्रसाद गुप्त
8. आधुनिक हिन्दी नाटक - डॉ.नगेन्द्र
9. हिन्दी की गद्य शैली का विकास - डॉ.जे.पी.शर्मा
10. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - जयकिशोर प्रसाद
11. हिन्दी कहानी की शिल्प विधि का विकास - डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल
12. हिन्दी साहित्य - बीसवीं सदी - डॉ.नन्ददुलारे वाजपेयी
13. हिन्दी कहानी का रचनाविधान - डॉ.जे.पी.शर्मा
14. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
15. हिन्दी उपन्यास - डॉ.शिवनारायण श्रीवास्तव
16. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ.नगेन्द्र
17. हिन्दी एकांकी और एकांकीकार - राम सूद
18. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य - रामविलास शर्मा
19. हिन्दी आलोचना - डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी
20. हिन्दी नाटक : उद्‌भव और विकास - डॉ.दशरथ ओझा

21. छायावाद - प्रो.नामवर सिंह

22. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - प्रो.नामवर सिंह

23. हिन्दी समीक्षा : स्वरूप और संदर्भ - डॉ.रामदरश मिश्र

24. काव्य की भूमिका - रामधारी सिंह दिनकर

25. हिन्दी का गद्य-साहित्य - डॉ.रामचन्द्र तिवारी

26. दूसरी परंपरा की खोज - प्रो.नामवर सिंह

27. छायावाद : पुनर्मूल्यांकन - सुमित्रानंदन पंत

28. हिन्दी साहित्य की भूमिका - आ.हजारी प्रसाद द्विवेदी

29. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - डॉ.रामस्वरूप चतुर्वेदी

30. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ.मंजु चतुर्वेदी

* * * * * * *

NOTES

NOTES

NOTES

ಆದೇಶ ಸಂಖ್ಯೆ : ಕರಾಮುವಿ/ಅಸಾವಿ/4–060/2013–2014 ದಿನಾಂಕ : 24–09–2013
ಒಳಪುಟ : 60 GSM MPM ವೈಟ್ ಪ್ರಿಂಟಿಂಗ್ ಪೇಪರ್ ಮತ್ತು ಹೊರಪುಟ: 170 GSM ಆರ್ಟ್‌ಕಾರ್ಡ್
ಮುದ್ರಕರು : ಅಭಿಮಾನಿ ಪಬ್ಲಿಕೇಷನ್ ಲಿ., ಬೆಂಗಳೂರು–10 ಪ್ರತಿಗಳು : 1,200

Karnataka State Open University

Manasagangotri Mysore - 570 006

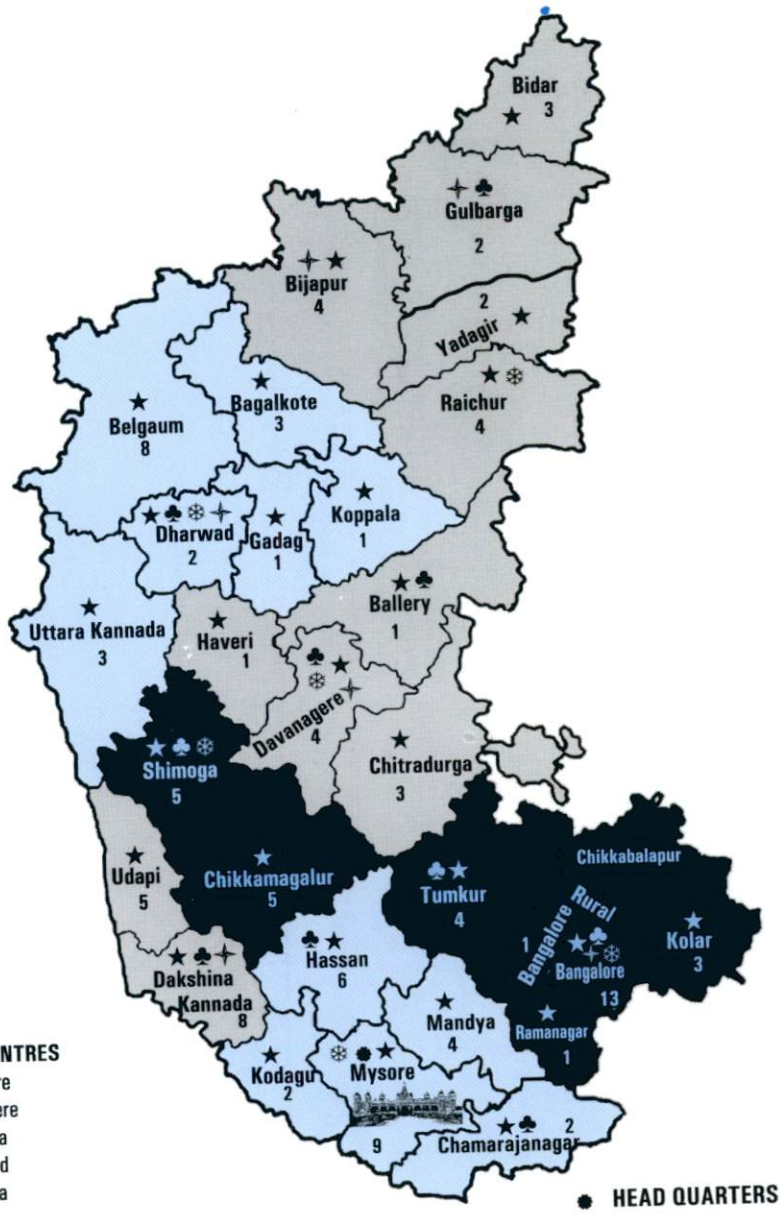

♣ **REGIONAL CENTRES**

Bangalore
Davanagere
Gulbarga
Dharwad
Shimoga
Mangalore
Tumkur
Hassan
Chamarajanagar
Bellary

● **HEAD QUARTERS**

★ **Total Study Centres : 111**

♣ **Regional Centres : 10**

❄ **B.Ed Study Centres : 10**

✦ **M.Ed Study Centres : 08**

Karnataka State Open University

Manasagangothri, Mysore - 570 006.

INSTRUCTIONAL SYSTEM